सुधा बीज बोने से पहले, कालकूट पीना होगा।
पहिन मौत का मुकट, विश्व-हित मानव को जीना होगा॥

भाग २] २० जनवरी सन् १९४१ [अंक १

प्रभु से प्रार्थना।

[ले०-श्री मुरलीधरजी, अजीतमल, इटावा]

प्रभु ! जीवन ज्योति जगादे !
घट-घट वासी ! सभी घटों में, निर्मल गङ्गाजल हो।
हे बलशाही ! तन-तन में, प्रतिभाषित तेरा बल हो॥
अहे सच्चिदानन्द ! बहे आनन्दमयी निर्झरिणी—
नन्दन बन सा शीतल इस जलती जगती का तल हो॥
सत् की सुगन्ध फैलादे।
प्रभु ! जीवन ज्योति जगादे॥
विश्वे देवा ! अखिल विश्व यह देवों का ही घर हो।
पूषन ! इस पृथ्वी के ऊपर असुर न कोई नर हो॥
इन्द्र ! इन्द्रियों की गुलाम यह आत्मा नहीं कहावे—
प्रभु का प्यारा मानव, निर्मल, शुद्ध, स्वतन्त्र, अमर हो॥
मन का तम तोम भगादे !
प्रभु जीवन ज्योति जगादे॥
इस जग में सुख शान्ति विराजे, कल्मष कलह नसावें।
दूषित दूषण भस्मसात हो, पाप ताप मिट जावें॥
सत्य, अहिंसा, प्रेम, पुण्य, जन-जन के मन-मन में हो—
विमल "अखण्ड-ज्योति" के नीचे सब सच्चा पथ पावें॥
भूतल ऊपर, स्वर्ग बसादे।
प्रभु ! जीवन ज्योति जगादे॥

आत्म-निवेदन।

'अखण्ड ज्योति' का उद्देश्य मनुष्य समाज में सदाचार, धर्म निष्ठा, भ्रातृ भाव और सुख शान्ति के विचारों में का प्रचार करना है। मनुष्य सम्राटों के सम्राट परमात्मा का उत्तराधिकारी-राजकुमार है। उसकी शक्ति महान है। परमात्मा में जो गुण हैं वे सब उसमें भरे हुए हैं। किन्तु जिस प्रकार एक सिंह का बच्चा भेड़ों के साथ रहकर अपने को भेड़ समझने लगा था वही दशा माया के संसर्ग से मनुष्य की हुई है। अखंड ज्योति का मिशन है कि हर सिंह अपने वास्तविक स्वरूप को जाने और अपने अधिकारों का दावा पेश करें।

इन सदुद्देश्यों में सहायता करना हर एक ईश्वर भक्त, धर्म-प्रेमी, सदाचारी और पवित्र हृदय वाले व्यक्ति का विशुद्ध कर्त्तव्य है।

अपने हर ग्राहक अनुग्राहक और प्रेमी से अखण्ड ज्योति आशा करती है कि वह अपना कर्तव्य धर्म समझ कर अखंड ज्योति के एक दो ग्राहक अवश्य बनादें।

निम्न महानुभावों ने इस मास कुछ नये ग्राहक बनाकर हमारे पुनीत कार्य में हाथ बटाया है, इसके लिये अखण्ड ज्योति विशेष रूप से कृतज्ञता प्रकट करती है।

नये ग्राहक बढ़ाने वाले महानुभावों की शुभ नामावली।

(१) हकीम गणपति राव, हैदराबाद।
(२) रानी साहिबा चन्द्रकुमारी देवी, कटनी।
(३) पं० नारायण प्रसाद तिवारी, कान्हीभाड़ा
(४) कुं० सज्जनसिंह भटनागर, महिदपुर
(५) डा० भगवान स्वरूप 'शूल' आन्तरी
(६) श्री हनुमत प्रसाद 'कुसुम' सीकर
(७) श्री रुद्रबहादुर श्रेष्ठ चालाछे, नेपाल
(८) वैष्णव नवनीतदास धर्माचार्य, धरोनिया
(९) श्री गुरुचरण जी आर्य युवक, बिहिया
(१०) मास्टर उमादत्त सारस्वत, बिसवाँ
(११) पं० भोजराज शुक्ल, ऐत्मादपुर
(१२) श्री० लालकृष्ण, रि० हैडमास्टर, बुलन्द शहर
(१३) स्वामी मुरलीधर जी, अजीतमल
(१४) श्री नेत्रपाल सिंह जी, अम्बाह
(१) पं० जगदीश प्रसाद शर्मा, खटीमा

इनके अतिरिक्त अन्य अनेक महानुभावों ने एक एक ग्राहक बनाया है। और कितनेक सज्जनों ने अगले मास ग्राहक बढ़ाने का वचन दिया है। इन सबको भी हार्दिक धन्यवाद है।

आप देख रहे हैं कि -"अखण्ड-ज्योति" का मिशन मनुष्य समाज में सदाचार, धर्मनिष्ठा, भ्रातृभाव और सुख शान्ति के विचारों का प्रचार करना है। मनुष्य में देवत्व का आविर्भाव करने के लिये यह नारद की तरह अलख जगाती हुई द्वार द्वार पर फिरती है। मीरा की तरह इसकी एक ही रट है- 'मेरे तो गिरधर गुपाल दूसरा न कोई'

"अखण्ड-ज्योति के सद्उद्देश्य में सहायता करना हर एक ईश्वर भक्त, धर्म प्रेमी, सदाचारी और पवित्र हृदय वाले व्यक्ति का कर्तव्य है। इस नास्तिकता, स्वार्थपरता और महंगी के युग में धर्म प्रमियों की सहायता बिना यह अखण्ड-ज्योति का धर्म तरु मुरझा जायगा।

प्रेमी पाठकों से 'अखंड-ज्योति' एक भिक्षा चाहती है ?

क्या ?

हर ग्राहक अनुग्राहक अपना कर्तव्य धर्म समझकर अखंड-ज्योति के कम से कम एक दो ग्राहक अवश्य बना दें।

इससे धर्म प्रचार का कार्य कई गुना बढ़ जाने से आपको पुण्य मिलेगा हमारी शक्ति बहुत बढ़ जायगी और यह मुरझाता हुआ वृक्ष हरा भरा होकर नये पत्र पुष्पों से सजा हुआ दिखाई देगा।

अखण्ड-ज्योति पूछती है कि "क्या आप हमारे लिये इतना कर सकते हैं ?"

बोलिये आप क्या उत्तर देते हैं।

जिन सज्जनों द्वारा इस कार्य में सहयोग मिलेगा उनकी शुभ नामावली आगामी अङ्क से इसी पृष्ट पर छपा करेगी।

क्या भ्रम ? क्या गम ? कैसा मातम ??

(रचियता—श्री० शशिभूषण)

हर दिल में एक जगह रक्खो, तो बढ़ा सको दो-चार कदम ;
है दूर प्रेम की पगडण्डी, है दूर बसेरा लिये सनम !

उम्मीद लिये जाना है तो दुख-दर्द झेलते आओ रे,
जो सीखो मुस्काना, तो पहले रोलो, फिर मुस्काओ रे !
गाने पर वह रोना कैसा, जो है हँसने के ही करीब ?
रोते आओ, गाते जाओ, मत गाकर रोये जाओ रे !

फिर पहचानो जड़ प्रेमहीन, फिर पहचानो प्रेमी जङ्गम !
हर दिल में एक जगह रक्खो, तो बढ़ा सको दो-चार कदम !

हो चाह अगर साथी की तो डालों में लिपटो झूम-झूम ;
कुछ बाहर की कुछ अन्दर की ले आओ आभा घूम-घूम !
है टेढ़ी चाल तुम्हारी गर यह तो प्रेमी की गई डगर,
तुम चलो झूमते ठीक डगर, या लौटो रजकण चूम-चूम !!

ढलता जग अपने सांचे में रक्खो जारी तुम अपना क्रम ;
हर दिल में एक जगह रक्खो तो बढ़ा सको दो-चार कदम !

बेबसी वही जो जाय ऊब, जो रोज छिले बस वही घाव ;
है प्रेम वही जो बने जलन, जो लौट न पावे वही दाम !
इस ओर मिले आधी रजनी, टिम टिम ताराओं का प्रदीप ;
तुम जग के नभ से सदा दूर, जग के नभ का तुम से दुराव !

आशाकी छबि तुममें चमचम, क्याभ्रम क्यागम, कैसा मातम ?
हर दिल में एक जगह रक्खो, तो बढ़ा सको दो-चार कदम !

जाओ, इस मञ्जिल से होकर दुख-तम से किन्तु न उठो सहम ;
जीवन की लाली किसी तरफ मिल जाए तो रे कम-से-कम ?
पत्थर दिल बन जाना न कहीं इन ईंट पत्थरों को निरेख,
खुद झांकी दीख पड़ेगी वह, सुन लोगे स्वयं तान पञ्चम !

फिर, देना सम पर ताल, प्राप्त होगा जब-जब वह स्वर-संगम ;
हर दिल में एक जगह रक्खो तो बढ़ा सको दो-चार कदम !

प्रकाशक-पं० श्रीराम शर्मा, फ्रीगंज आगरा। मुद्रक-पं० मधुसूदनशरण शर्मा, न्यू फाइन आर्ट प्रिंटिंग काटेज
दौलत मारकीट, जौहरी बाजार, आगरा।

सुधा बीज बोने से पहले, कालकूट पीना होगा।
पहिन मौतका मुकट, विश्व-हित मानवको जीना होगा॥

आगरा २० जनवरी सन् १९४१

नवीन वर्ष।

सन् ४० अपनी बुरी भली प्रिय अप्रिय घटनाओं में उदरस्थ करता हुआ भूत के गर्त में सदा के लिये चला गया। अब उसका दर्शन हो सकना संभव नहीं है। उजड़े हुये राष्ट्र बसेंगे, बरबाद हुई बस्तियां सरसब्ज होंगी, आज का दुर्धर द्वेष कल शान्त हो जायगा। जिन वस्तुओं का अभाव हुआ है समय पाकर उनकी पूर्ति होजायगी परन्तु यह सन् ४० किसी भी प्रकार देखने को न मिल सकेगा चाहे कितना ही प्रयत्न क्यों न किया जाय।

महारानी एलिजाबेथ का मृत्युकाल जब उपस्थित हुआ तब उन्होंने आर्त्तवाणी में गिड़गिड़ा कर समर्थ लोगों से याचना की कि यदि उनका जीवनकाल कोई थोड़ा और बढ़ा दे तो वे उसे विपुल सम्पत्ति दे देंगी। उस स्थान पर बड़े बड़े डाक्टर प्रसिद्ध वैज्ञानिक, ख्याति नामा मनस्वी उपस्थित थे पर सब लाचार थे कोई एक क्षण के लिए भी उनका जीवन-काल न बढ़ा सका। सारी फौज़, तोपखाने, नौकर चाकर, खजाने, राज्य जहां के तहां पड़े रहे एक तिनके की बराबर भी किसी से उनकी मदद न हो सकी। उस वक्त के दर्शन अनुभव कर रहे थे कि वास्तव में समय क्या वस्तु है और उसका कितना मूल्य है।

इन पंक्तियोंके पाठक अवश्य ही वयस्कयुवा अधेड़ या वृद्ध होंगे। आप लोग जब अपने जीवन की भूतकालीन स्मृतियों पर दृष्टि डालते होंगे तो हृदयमें एक टीस उठती होगी, कलेजे में एक हूक पैदा होती होगी। जरा अपने बचपन की याद तो कीजिये पुराने छोटे छोटे साथी, खेल कूद का मजा, माता का लाड़ प्यार, सब प्रकार की निश्चिन्तता कितना सुन्दर समय था वह! क्या वह दिन अब फिर नहीं मिल सकते? इच्छा होती है कि किसी प्रकार उन दिनों की एक झांकी फिर कर सकें। किसी तरह आधी घड़ी के लिए वह बचपन फिर मिल जावे तो उसकी गोद में मचल मचल कर लोट लें। विरही जिस प्रकार अपने अज्ञान स्थान पर चले गये प्रेमी के लिए तड़फड़ाता है हममें से हरएक भावुक व्यक्ति अपने भूतकाल की स्मृतियों में वैसी ही एक टीस का अनुभव करता है।

एक मज़दूर बड़े परिश्रम से कुछ चावल कमाकर लाया था उन्हें खुशी खुशी सिर पर रखकर घर लिये जा रहा था। अचानक उस बोरी में छेद होगया और धीरे धीरे उसकी गैर जानकारी में वे चावल पीछे की ओर गिरते गये यहां तक कि कुछ आगे जाने पर उसकी बोरी ही खाली होगई। जब देखा तो उसे होश हुआ। पीछे मुड़कर देखा तो फर्लांगों से धीरे धीरे वह चावल फैल रहे थे और धूल में मिलकर दृष्टि से ओझल हो गए थे। उसने एक हसरतभरी निगाह उन दानों पर डाली और कहा—काश, मैं इन दानों को फिर से पा सका होता। पर वे तो पूरी तरह धूल में गढ़ चुके थे वे मिल नहीं सकते थे। बेचारा खाली हाथ घर लौटा, दिन भर का परिश्रम, चावलों का बिखर जाना, पेट की जलती हुई ज्वाला इन तीनों की स्मृति उसे बेचैन बनाये दे रही थी।

हमारे जीवन का अमूल्य हार कितना सुन्दर है; हम इसे कितना प्यार करते हैं। माता खुद भूखी रहकर अपने नन्हें से बालक को मिठाई खरीदकर खिलाती है, बालक के मल मूत्रों में खुद पड़ी रहकर उसे सूखे बिछौने पर सुलाती है वह बड़े से बड़ा नुकसान करदे एक कडुआ शब्द तक नहीं कहती। हमारा आत्मा हमारे जीवनसे इतना ही नहीं बल्कि इससे भी अधिक प्यार करता है। जीवन सुखी बीते, उसे आनन्द और प्रसन्नता प्राप्त हो इसके लिए आत्मा पाप भी करता है खुद भूखा रहकर उसे मिठाई खिलाता है। नरकों की यातना सहता है—खुद मलमूत्रों में पड़ा रहकर उसे सूखे बिछौने पर सुलाता है। यह प्यार माता के प्यार से किसी प्रकार कम नहीं है। जीवन को हम जितना प्यार करते हैं उतना वय

कोई किसी को कर सकता है। इस अमूल्य हार को हम प्राण प्रिय बनाए हुए हैं। एक राजा कैद में पड़ा रहा था अपनी आँखें निकलवादी थीं पर हीरे को नहीं दिया था इतना ही प्यारा हमें यह जीवन होना है।

पर हाय! इसकी एक एक मणि चुपके चुपके मज़दूर के चावलों की तरह बिखरती जा रही है। और हम मदहोश होकर मस्ती के गीत गाते हुए झूम झूमकर आगे बढ़ते जा रहे हैं। जीवन लड़ी के अनमोल मोती घड़ी, घंटे, दिन, सप्ताह, पक्ष मास और वर्षों के रूप में धीरे-धीरे व्यतीत होते जा रहे हैं। एक ओर माता कहती है मेरा पूत बड़ा हो रहा है दूसरी ओर मौत कहती है मेरा ग्रास निकट आ रहा है। बूंद बूंद करके जीवन रस टपक रहा है और घड़ा ख़ाली होता जा रहा है। कौन जानता है कि हमारी थैली में थोड़ा बहुत बचा भी है कि सब फैल चुका जो लोग इन पंक्तियोंको पढ़ रहे हैं उनमें से कितने ही ऐसे होंगे जिन्हें सन् ४१ जनवरी देखने को न मिलेगी। फिर भी क्या हम इस समस्या पर विचार करते हैं? कभी सोचते हैं कि समय क्या वस्तु है उसका क्या मूल्य है? यदि हम नहीं सोचते और अपनी पीनक को ही स्वर्ग सुख मानते हैं तो सचमुच गत वर्ष को गंवाना और नवीन वर्ष का आना कोई विशेष महत्व नहीं रखता।

जब व्यापार में एक रुपए का घाटा पड़ जाता है तो बड़ी गंभीरता के साथ उस विषय पर विचार करते हैं परन्तु प्यारे पाठक! क्या आप कभी इस पर भी विचार करते हैं कि आपके जीवन का इतना बड़ा भाग सर्वोत्तम अंश किस प्रकार बर्बाद होगया। क्या इसे इसी प्रकार नष्ट करना चाहिए था? क्या आत्मा इन्हीं कर्मों की पूर्ति के लिये ईश्वर ने भेजा था जिनको अब तक तुमने पूरा किया है? मालिक के दरबारमें अपने काम का ब्यौरा देनेके लिए क्या तुम तैयार हो? संभव है आज तुम्हें यह पंक्तियां व्यर्थ जंचती हों और इनका कुछ महत्व न मालूम होता हो परन्तु याद रखो वह दिन दूर नहीं है जब तुम्हें यही प्रश्न शूल की तरह दुख देंगे। जब जीवन रस की अन्तिम बूंद टपक जायगी और तुम मरे हुये खरगोश की तरह मृत्यु के कंधे पर लटक रहे होगे तब तुम्हारी तेज़ निगाह, बुढ़ापा, अधेड़ अवस्था, यौवन, किशोरावस्था, बचपन और गर्भावस्था तक दौड़ेगी। अपने अमूल्य हार की एक एक मणि धूलि में लोटती हुई दिखाई देगी तब अपनी मदहोशी पर तिलमिला उठोगे। भावुकों के हृदय में बचपन के दर्शनों के लिए जैसी टीस उठती है विधवा के हृदय में अपने स्वर्गस्थ प्राणप्रिय पति के दर्शनों की जैसी हूक होती है उससे करोड़ों गुनी तड़पन उन एक एक मोतियों को देखने की होगी जिन्हें आज व्यर्थ की वस्तु समझ कर लातों से ठुकरा रहे हो। आज तो 'समय काटने' की जरूरत पड़ती है। फालतू समय को निकालने के लिये ताश या फलाश खेलने की तरकीब सोचनी पड़ती है पर अभागे आदमी! परसों पछतायगा इन अमूल्य क्षणों के लिए! और शिर धुन धुनकर रोयेगा अपने इस पाजीपन पर।

❀ ❀ ❀ ❀

सन् ४० को गये हुये अभी बहुत देर नहीं हुई। देखो वह अभी दिखाई देता है बेचारा गरदन मोड़ मोड़कर हमारी ओर देखता जाता है। आंखों में से आंसू बहाता जाता है। भरे हुये गले से कहता जाता है "प्रभु की परम प्रिय संतानों! मैं जा रहा हूं। इस निर्मल विश्व का यही रिवाज है जो आता है वह चला जाता है। मैं हंसता हुआ बड़े स्वागत सत्कार के साथ आया था और आँसू बहाता हुआ जा रहा हूं। अब मेरी छाया भी किसी को देखने के लिये न मिलेगी। मैं जा रहा हूं पर ओह! मेरे एक वर्ष के संगियो! इतना कहे जाता हूं कि जाना तुम्हें भी है। मेरी तरह तुम भी लोह बंधनों में बंधे हुये घसिटते चले जाओगे। इसलिये भूलना मत। मदहोशी में मत झूमना। सोचना कि मैं क्या हूं?" और क्या से क्या बना हुआ हूं।"

इधर नया वर्ष मुस्कराते बालक की तरह झुककर हमें अभिवादन करता है और कहता है— "ये पछताने वालो! घबराओ मत। जो बीत गया उसे जाने दो रंज मत करो। मैं तुम्हारा वफादार नौकर हाजिर हूं। मेरे लिये हुक्म करो। जो बनना चाहते हो बना दूंगा जो पाना चाहतेहो ला दूंगा।"

क्या यह संक्रांति हमें कुछ संदेश नहीं देती?

दूसरों में जो बुराइयाँ हमें दीखा करती हैं वे प्रायः हमारे ही हृदय के बुरे भले भावों का प्रतिबिम्ब मात्र होती हैं। यदि हमारे अन्दर बुरे तत्व अधिक हैं तो हमें सामने वाले की बुराइयाँ पहले और अधिक दिखाई देंगी। यदि हममें अच्छे तत्व अधिक हैं तो अच्छाइयाँ दिखाई देंगी।

सर्वधर्म समभाव।

[महात्मा गान्धी]

अपने व्रतों में जिस व्रत को हम लोग सहिष्णुता के नाम से जानते हैं, उसे यह नया नाम दिया है। सहिष्णुता अंग्रेजी शब्द 'टालरेशन का अनुवाद है। यह मुझे पसन्द न आया था। या दूसरा शब्द सूझता न था, काका साहब को भी उन्होंने 'सर्वधर्मआदर' शब्द सुझाया। मुझे वह भी अच्छा न लगा। दूसरे धर्मों को सहन करने में उनमें न्यूनता मान ली जाती है। आदर में कृपा का भाव आता है। अहिंसा हमें दूसरे धर्मों के प्रति समभाव सिखाती है। आदर और सहिष्णुता अहिंसा की दृष्टि से पर्याप्त नहीं हैं। दूसरे धर्मों के प्रति समभाव रखने के मूल में अपने धर्म की अपूर्णता का स्वीकार भी आ ही जाता है। और सत्य की आराधना, अहिंसा की कसौटी यही सिखाती है। सम्पूर्ण सत्य यदि हमने देखा होता तो फिर सत्य का आग्रह कैसा ?—तब तो हम परमेश्वर हो गये, क्योंकि यह हमारी भावना है कि सत्य ही परमेश्वर है हम पूर्ण सत्य को नहीं पहचानते, इसी-लिए उसका आग्रह करते हैं इसी से पुरुषार्थ की गुञ्जाइश है। इसमें अपनी अपूर्णता को मान लेना आ गया। हम अपूर्ण तो हमारे द्वारा कल्पित धर्म भी अपूर्ण, स्वतन्त्र धर्म सम्पूर्ण है। उसे हमने नहीं देखा—जिस तरह ईश्वर को हमने नहीं देखा। हमारा माना हुआ धर्म अपूर्ण है और उसमें सदा परिवर्तन हुआ करता है, होता रहेगा। ऐसा होने से ही हम उत्तरोत्तर ऊपर उठ सकते हैं, सत्य की ओर–ईश्वर की ओर दिन प्रतिदिन आगे बढ़ सकते हैं। और यदि मनुष्य-कल्पित सभी धर्मों को अपूर्ण मानलें तो फिर किसी को ऊंच-नीच मानने की बात नहीं रह जाती। सभी सच्चे हैं, पर सभी अपूर्ण हैं, इसलिए दोष के पात्र हैं। समभाव होने पर भी हम उसमें दोष देख सकते हैं। हमें अपने में भी दोष देखने चाहियें। उस दोष के कारण उसका त्याग न करें, पर दोष दूर न करें। यों समभाव रखें तो दूसरे धर्मों मे जो कुछ ग्राह्य जान पड़े, उसे अपने धर्म में स्थान देते सङ्कोच न हो, इतना ही नहीं; वैसा करना धर्म हो जाय।

सभी धर्म ईश्वरदत्त हैं, परन्तु वे मनुष्य-कल्पित होने के कारण, मनुष्य द्वारा उनका प्रचार होने के कारण वे अपूर्ण हैं। ईश्वरदत्त धर्म अगम्य है। मनुष्य उसे भाषा में प्रकट करता है। उसका अर्थ भी मनुष्य लगता है। किसका अर्थ सच्चा माना जाय ? सब अपनी-अपनी दृष्टि से जबतक वह दृष्टि बनी रहे, तब तक सच्चे हैं। परन्तु सभी का झूठा होना भी असम्भव नहीं है। इसीलिए हमें सब धर्मों के प्रति समभाव रखना चाहिये। इससे अपने धर्म के प्रति उदासीनता नहीं उत्पन्न होती, परन्तु स्वधर्म-विषयक प्रेम, अन्ध प्रेम न रहकर ज्ञानमय हो जाना है। इससे अधिक सात्त्विक तथा निर्मल बनता है। सब धर्मों के प्रति समभाव आने पर ही हमारे दिव्य चक्षु खुल सकते हैं। धर्मान्धता और दिव्य दर्शन में उत्तर दक्षिण जितना अन्तर है। धर्मज्ञान होने पर अन्तराय मिट जाते हैं और समभाव उत्पन्न होना है। इस समभाव का विकास करके हम अपने धर्म को अधिक पहचान सकते हैं।

यहाँ धर्म अधर्म का भेद नहीं मिटता। यहाँ तो उन धर्मोंकी बात है, जिन्हें हम निर्धारित धर्मके रूपमें जानते हैं। इन सभी धर्मों के मूल सिद्धान्त एक ही हैं। सभी में सन्त, स्त्री, पुरुष हो गये हैं, आज भी मौजूद हैं। इसलिए धर्मों के प्रति समभाव में और धर्मियों मनुष्यों मनुष्य के प्रति वाले रू भाव की आवश्यकता है, परन्तु अधर्म के प्रति कदापि नहीं।

तब प्रश्न यह होता है कि बहुत से धर्मों की क्या आवश्यकता है ? यह हम जानते हैं कि धर्म अनेक हैं। आत्मा एक है, पर मनुष्य अगणित हैं। देह की असंख्यता दूर करने से दूर नहीं हो सकती। फिर भी आत्मा की एकता को हम जान सकते हैं। धर्म का मूल एक है जैसे वृक्ष का, परन्तु उसमें पत्ते अगणित हैं।

धर्म का आचरण।

[श्री स्वामी विवेकानन्दजी]

आप यह अच्छी तरह समझ रक्खें कि किसी धर्म पुस्तक के पाठ करने अथवा उसमें लिखी हुई धर्म विधियों की कवायद करने से ही कोई धार्मिक नहीं हो सकता। किसी धर्म या धर्म पुस्तक पर विश्वास करने से ही इस 'जन्म का सार्थक नहीं होगा' उसमें बताये हुए मार्गों का अनुभव करना चाहिये। 'जिनका अन्तःकरण पवित्र है वे धन्य हैं, वे ईश्वर को देख सकेंगे।' यह बाइबिल का कथन अक्षरशः सत्य है। परमेश्वर का साक्षात्कार करना ही मुक्ति है। कुछ मन्त्र रट लेने या मन्दिरों में शब्दाडम्बर करने से मुक्ति नहीं मिलती। परमात्मा की प्राप्ति के लिये बाह्यसाधन कुछ काम नहीं आते, उसके लिये आन्तरिक सामिग्री की जरूरत है। इससे कोई यह न समझलें कि बाहरी साधनों का मैं विरोधी हूं। आरम्भ में उनकी आवश्यकता होती ही है पर साधक जैसा-जैसा उन्नत होता है. वैसी-वैसी उसकी उस ओर से प्रवृत्ति कम हो चलती है. आप यह निश्चय समझें कि किसी पुस्तक ने ईश्वर को उत्पन्न नहीं किया किन्तु ईश्वर की प्रेरणा से धर्म पुस्तकों की रचना हुई है। यही बात जीवात्मा के सम्बन्ध में है। सब धर्मों का अन्तिम लक्ष्य जीवात्मा और परमात्मा का ऐक्य कर देने का है। यही विश्वधर्म है। कल्पना और मार्ग भिन्न २ होने पर भी सबका केन्द्र एक ही है। सब धर्मों का मूल्य क्या है? ऐसा यदि कोई मुझ से प्रश्न करे तो मैं उसे यही उत्तर दूंगा कि 'आत्मा की परमात्मा से एकता कर देना ही सब धर्मों का मूल है। सच्ची दृष्टि से छाया के समान देख पड़ने वाले और इन्द्रियों से अनुभव होने वाले इस जगत में जिस दिन परमात्मा का अनुभव कर लेंगे उसी दिन हम कृतकार्य्य होंगे तब हमको इस बात के विचार करने की आवश्यकता न होगी कि हमें यह दशा किस मार्गसे प्राप्त हुई है। आप चाहे किसी मतको स्वीकार करें, या न करें किसी मत या पन्थ के कहावें या न कहावें परमेश्वर का अस्तित्व अपने आप में अनुभव करने से ही आपका काम बन जायगा। कोई मनुष्य संसार के सब धर्मों पर विश्वास करता होगा, संसार के सब धर्म ग्रन्थ उसे कण्ठ होंगे, संसार के सब तीर्थों में उसने स्नान किया होगा। तो भी यह सम्भव नहीं है कि परमात्मा की स्पष्ट कल्पना भी उसके हृदय में न हो! इसके विपरीत सारे जीवन में जिसने एक भी मन्दिर या धर्मग्रन्थ नहीं देखा और न उसमें लिखी कोई विधि ही की होगी, ऐसा पुरुष परमात्मा का अनुभव अन्तःकरण में करता हुआ देख पड़ना सम्भव है। जो मनुष्य कहता है कि मैं कहूं वह सच है और सब मिथ्या है यह कभी विश्वास योग्य नहीं है। एक धर्म सच है तो अन्य धर्म क्योंकर मिथ्या हो सकते हैं? जो परमत सहिष्णु और समग्र मानव जाति पर प्रेम करे वही सच्चा साधु समझना चाहिये। परमेश्वर हमारा पिता और हम सब भाई हैं, यही भावना मनुष्य को उन्नत बना सकती है। यदि कोई जन्म से अज्ञान है तो क्या उसका कर्त्तव्य ज्ञान सम्पादन करने का नहीं है? वह यों कहे कि हम जन्म से मूर्ख हैं तो अब क्यों ज्ञानी बनें। तो सब उसे महामूर्ख कहेंगे। यदि हमारे :सङ्कुचित विचार हों तो उन्हें महान् बनाना क्या हमारे लिये कोई अपमान की बात है? धर्मोपासना के विशिष्ट स्थान, निश्चित और खास विधि सभी धर्म-पन्थों में बताये हैं उनके लिये एक दूसरों का उपहास करना क्या कोई बुद्धिमानी है। ये तो बालकों के खिलौनों की तरह हैं। ज्ञान होने पर बालक उन खिलौनों की जिस प्रकार परवाह नहीं करते, उसी प्रकार ईश्वर तक पहुँचे हुए लोगों को उक्त साधनों का महत्व नहीं प्रतीत होता किसी खास मत पन्थों को बिना जाने बूझे ज्ञान होने पर भी मानते रहना, बचपन का कुरता युवावस्था में पहिनने की इच्छा करने के बराबर उपहास के योग्य है। मैं किसी धर्मपन्थ का विरोधी नहीं हूं और न मुझे उनकी .अनावश्यकता

ही प्रतीत होती है। पर यह देखकर हँसी रोके से भी नहीं रुकती कि कुछ लोग स्वयं जिस धर्म के रहस्यों को नहीं जानते उसे वे दूसरों पर भी लादने में जी जान से कोशिश करते हैं। वे यदि अपना अमूल्य समय इस अध्याषारेषु व्यौपार के बदले उन्हीं तत्वों के जानने में लगावें तो क्या ही अच्छा हो? अनेक धर्मपन्थ उन्हें क्यों खटकते हैं सो मेरी समझ में नहीं आता! लोग अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार धर्म का अनुकरण करें तो किसी का क्या बिगड़ेगा? हरएक व्यक्ति के लिये स्वतन्त्र धर्म हो तो भी मेरी समझ में कोई हानि नहीं किन्तु लाभ ही है। क्योंकि विविधता से संसार की सुन्दरता बढ़ती है। उदरतृप्ति के लिये अन्न की आवश्यकता है, परन्तु एक ही रस की अपेक्षा अनेक रसों के विविध पदार्थ होने से भोजन में अधिक रुचि आती है। कोई ग्रामीण, जिसे तरह-तरह के पदार्थ मयस्सर नहीं और जो केवल रोटी तथा प्याज के टुकड़े से पेट भर लेता है—यदि किसी शौकीन के खाने के नानापदार्थों की निन्दा करे तो वह खुद जिस प्रकार उपहास के पात्र होगा, उसी प्रकार एक ही धर्मविधि के पीछे लगे हुए दूसरे धर्मों की निन्दा करने वाले लोग स्तुति के पात्र नहीं हो सकते।

हरएक विपत्ति मनुष्य के साहस की परीक्षा लेने आती है और हरएक दुख ईश्वर के प्रति दृढ़ विश्वास की जाँच करने आता है।

❀ ❀ ❀ ❀

मृत्यु जीवन का अन्तिम अतिथि है इससे डरने का कोई कारण नहीं। दिन भर चलकर थका हुआ पथिक अन्धकारमयी रात्रि की कामना करता है। जिसमें विश्राम करके वह नए उत्साह के साथ नवीन प्रभात में अपने पथ पर अग्रसर हो सके। उसी प्रकार लम्बी यात्रा से थके हुए प्राणियों की मृत्यु का अभिनन्दन करना चाहिए।

शक्ति व स्वास्थ्य प्राप्त करो।

[ले०—श्री नित्यानन्द पारिक, आगरा।]

इस प्रकार के कितने ही मनुष्य हैं जो दूसरों की भलाई करते हैं पर स्वयं अपना भला नहीं चाहते। वे न तो अपने शरीर और स्वास्थ्यकी ही परवाह करते हैं और न अपनी शक्तियों का सदुपयोग। वे दूसरे के मित्र बनना चाहते हैं पर अपने शत्रु बने हुए हैं। दूसरों के साथ भलाई करना अच्छा है पर अपने साथ भलाई करना उससे भी अच्छा है। हर एक व्यक्ति का धर्म है कि मन और शरीर को स्वस्थ रखने का शक्तिभर प्रयत्न करे। अन्यथा वह कैसे कह सकता है कि मैं ईश्वर की सन्तान हूं—उसी का प्रतीक हूं।

ऐसे बहुत से मनुष्य हैं जो चाहें तो बहुत बड़े काम कर सकते हैं परन्तु कर नहीं पाते! उनका जीवन निराशा के झूले में झूलता हुआ उन छोटे कामों में ही व्यतीत हो जाता है। कारण यह है कि उनमें इतनी शक्ति नहीं रही कि वे अपनी कठिनाइयों को दूर कर सकें और विघ्न-बाधाओं को हटा सकें। उन्होंने अपने शरीर की रक्षा नहीं की है और इसी कारण उनका हृदय दुर्बल हो गया है तथा इन्द्रियाँ शिथिल पड़ गई हैं ज़रा ज़रा से कामों के करने पर वे थक जाते हैं।

हमारी शक्ति का बहुत बड़ा भाग क्रोधादि दुर्गुणों से नष्ट हो जाता है। शरीर को भस्म कर देने के लिये क्रोध से बढ़कर कोई चीज़ नहीं। क्रोधी मनुष्य रात-दिन अपने को जलाता रहता है। चिन्ता भी मनुष्य के शरीर के लिये विष तुल्य है। चिन्ता की उपमा चिता से होती है। ईर्षा, द्वेष, निन्दा, घृणा सब शरीर को घुलाने वाली हैं। इनसे मन और शरीर दोनों की अवनति होती है।

तुम्हारे जीवन का सबसे बड़ा उद्देश्य यह होना चाहिए कि अपनी शारीरिक और मानसिक शक्तियों को ऊंची से ऊंची बनाओ।

स्वर्ग नरक क्या है ?

(वेदान्त का दृष्टिकोण)

जिस प्रकार निद्रा और उसके अन्तर्गत स्वप्न की स्थिति है और वह स्वप्न स्थिति जाग्रतावस्था ही के विचारों पर अवलम्बित है उसी प्रकार मृत्यु की भी स्थिति होती है और वह स्थिति जीवन समय की भावनाओं पर अवलम्बित है । यहां प्रश्न होता है कि वेदान्त इस प्रश्न का उत्तर इस भांति देता है कि इस समय स्वर्गों के सुख उपभोग में अथवा नरकों के घोर दुख में इन्द्र के नन्दन बन का ऐश्वर्य अनुभव करने में अथवा अन्धकारतम दुख में पड़े रहने आदि की स्थिति में व्यतीत होता है अब प्रश्न उठता है कि स्वर्ग और नरक की कल्पना क्या है ? इस प्रश्न का समाधान यह है कि यह केवल कल्पना से उत्पन्न किये हुये मनोराज हैं । मानलो कि एक क्रिश्चियन अत्यन्त श्रद्धालु है वह क्रिश्चियन धर्म के शास्त्रानुसार चलने वाला है प्रति रविवार को वह प्रार्थना मंदिर, गिरजा में जाने को नहीं चूकता प्रतिदिन सुबह और शाम अन्तःकरण पूर्वक भावयुक्त होकर ईश्वर से प्रार्थना करता है । भोजन से पहले ईश्वर से उसकी कृपा मांगा करता है । सारांश यह है कि उसने अपना जीवन क्राइस्ट के चिन्तक और उसके चरित्रसे तदात्म होनेमें व्यतीत किया अस्सी नव्वे वर्ष का समय इसी प्रकार व्यतीत करते हुये उसने अपने धर्ममय जीवन के फल में जो-जो भावनायें की हैं कि मृत्यु के बाद मुझे सम्मान देने को देवों का झुण्ड आवेगा, ईसु के दायें हाथ की ओर बैठने का मुझे सम्मान मिलेगा । तो उसकी ये भावनायें अवश्य सफल होंगी । पुनर्जन्म से पहले उसे यह स्थिति अवश्य प्राप्त होगी । यह मानने में कोई कारण नहीं है कि उसे यह स्थिति प्राप्त न हो । वेदान्त कहता है कि क्रिश्चियनो ! यदि तुम्हारे हृदय में दृढ़ श्रद्धा भावना और भक्ति होगी तो तुम्हारी धर्म पुस्तकों में जो आश्वासन दिये हैं,धर्म पालन के जो फल दिखलाये हैं वे अवश्य फलित होंगे यह निश्चित है परन्तु ध्यान रक्खो कि तुम्हारा मुसलमान और हिन्दुओं की निन्दा करना अयोग्य है । मानलो कि एक मुसलमान मुहम्मद का सच्चा अनुयायी है कुरान की आज्ञानुसार प्रतिदिन बिना चूक चार पांच बार नमाज पढ़ता है वह मुहम्मद के लिये ही अपना जीवन समझता है और उनकी प्रीति के लिये जीवन उत्सर्ग करने को सदा तैयार रहता है तो ऐसे मनुष्य का संकल्प बिना पूर्ण हुए नहीं रह सकता । वेदान्त कहता है कि सृष्टि में ऐसा कोई भी नियम नहीं है ऐसी कोई भी शक्ति नहीं है कि उक्त प्रकार के मुसलमान के संकल्प को फलित होने में बाधा डाल सके । यह निश्चित है कि यदि ऐसे मुसलमान ने मृत्यु के बाद स्वर्ग के सुन्दर-सुन्दर उपवनों में, भव्य विशाल राज मन्दिरों में खूबसूरत परियों के साथ-साथ राजविलास के भोगने की और मद्यपान का आनन्द प्राप्त होने की कल्पना की है और उस कल्पना के झूले पर झूलते हुए अपनी आयु पूर्ण की है तो मृत्यु के बाद और पुनर्जन्म के पहले बीच की स्थिति में उसे अवश्य वे भोगोपभोग प्राप्त होंगे । परन्तु वेदान्त यह भी कहता है कि हे मुहम्मदानुयायियो ! तुम यह कहने का साहस न करो कि मृत्यु के बाद केवल मुहम्मद पैगम्बर ही एक ऐसा है जो न्याय करेगा, प्राणियों को ठिकाने लगावेगा । क्रिश्चियनों को उनके विचारानुसार चलने दो । यूरोप,अमेरिका एशिया, चीन, आदि में मरने वाले मनुष्यों को मुहम्मद की संरक्षता में न देकर स्वतंत्र रहने दो । यह हठ छोड़ो कि हमारे पैगम्बर पर विश्वास रखो तो ही तरोगे अन्यथा नहीं । इस प्रकार का विधान करने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं है, यह निष्ठुरता है । तुम्हारे धर्म द्वारा निश्चित मार्ग से यदि तुम जाओगे तो उसका फल तुम्हें मिलेगा । जीवनावस्था में तुमने जो आकांक्षायें की होंगी उनके अनुसार तुम्हारे लिये स्वर्ग का दरवाजा खुला हुआ है उसी प्रकार अन्य धर्मानुयायियों के लिये भी खुला रहने दो ।

वास्तव में देखा जाय तो स्वर्ग और नरक अपने पर ही अवलम्बित है हम स्वयं ही अपने लिए स्वर्ग और नरक बनाते हैं क्योंकि स्वर्ग और नरक कल्पना है । स्वप्नों की कल्पना की अपेक्षा इस कल्पना में सत्य का भाग कुछ अधिक नहीं है । तुम जानते ही हो कि स्वप्न में स्वप्न की स्थिति कभी असत्य मालूम नहीं होती उसी प्रकार मृत्यु के बाद स्वर्ग नरक की कल्पना उस काल के लिये मृत्यु और पुनर्जन्म के बीच के समय के लिये अक्षर अक्षर सत्य हैं परन्तु तत्वदृष्टि से यदि देखा जाय तो उस कल्पना में स्वर्ग और नरक

की कल्पना में स्वप्न की अपेक्षा कुछ अधिक सत्य नहीं है। यहाँ इस पर भी विचार कर लेना आवश्यक है कि लोग कहते हैं कि जब तुम मानते ही कि हमारे धर्मों में दिये हुये आश्वासन सच्चे हैं तो मृत्यु के बाद जो गति इमें प्राप्त होने वाली है वह आत्यान्तिक सुखमय और शास्वत होनी चाहिये क्योंकि हमारे धर्मों में कहा गया है कि मनुष्य की मृत्यु के बाद उसे प्राप्त होने वाले स्वर्ग नरकादि चिरकाल तक रहने वाले हैं। इस पर वेदाँत का कहना है कि शास्वत काल का अर्थ दीर्घ काल है प्रायः अनन्तकाल है। परंतु यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि स्वप्नावस्था और जागृत अवस्था में काल के माप करने की पद्धतियां भिन्न भिन्न प्रकार की हैं। कितनी बार अपनी आँखों के सामने स्वप्न में ऐसी स्थिति दीखती है कि हजारों वर्ष पुरानी बात है जैसा कि स्वप्न में किसी ने एक पर्वत देखा जागृतवस्था की अपेक्षा वह पर्वत नवीन ही उत्पन्न किया गया है परंतु स्वप्न दृष्टि की अपेक्षा उसे उत्पन्न हुये हजारों वर्ष हो गये हैं। इसी प्रकार मृत्यु के बाद इन्द्र के नन्दन वन में स्वर्ग सुख में अथवा नरक में चिरकाल तक रहने का जो भाव होता है वह स्वप्न स्थिति की अपेक्षा होता है। जागृतावस्था के दर्शक की दृष्टि से नहीं। बाइबिल में कहे हुये आश्वासनों पर ही विचार करें इसमें कुछ संशय नहीं है कि आश्वासन सफल अवश्य होते हैं क्योंकि मृत्यु के बाद की स्थिति में बाइबिल में कहे हुये अनन्तकाल का शाश्वत स्थिति का भान अवश्य होता है परंतु जागृत अवस्था की दृष्टि में वह भान वह मृत्यु के बाद की चिरकाल की स्थिति क्षणभङ्गुर और मृग तृष्णा के जलवत् है। यह विवेक जगत् के भिन्न भिन्न धर्मों के मृत्यु के बाद की स्थिति के सम्बन्ध में जो मत है उसका मिलान किस दृष्टि से करता है यह मालूम हो जाता है।

अब प्रश्न उत्पन्न होता है कि पुर्नजन्म क्या है? और मुक्त पुरुष जो कहलाते हैं वह कौन हैं? इसका उत्तर वेदांत इस प्रकार देता है कि मृत्यु के बाद सबको स्वर्ग नरक में जाना ही चाहिये और पुनर्जन्म लेना ही चाहिये ऐसा कोई निश्चित नियम नहीं है। जो मुक्त पुरुष होते हैं उन्हें जन्म-मरण के फेर में नहीं पड़ना पड़ता। स्वर्ग नरक के बंदीगृह में रहने की उन्हें कोई आवश्यकता नहीं। वे सम्पूर्ण चराचर को अपने में देखते हैं ऐसे मुक्त पुरुषों का विवेचन करने की यहां आवश्यकता है।

स्वप्न के दो भाग होते हैं एक दृष्टा दूसरा दृश्य। नदी, पर्वत, बन, वृक्ष आदि दृश्य वस्तुओं से घिरा हुआ यह आत्मा प्रवासी दृष्टा है स्वप्न में अनेक बातें देखी जाती हैं उनमें "मैं" कहने वाली एक भिन्न वस्तु है और उससे जो भिन्न दिखाई देता है वे दृश्य वस्तु हैं वे स्वप्न का दृश्य भाग हैं। वेदांत कहता है कि स्वप्न की दृष्टा और दृश्यरूप दो भाग वाली स्थिति जागृत अवस्था के आत्मा ने ही निर्माण की है। हम ही नदी पर्वत बाग वृक्ष उनमें विचरने वाले पशु पक्षी बनते हैं और हम हीं इन्हें देखने वाले दृष्टा बनते हैं दोनों ही हम हैं। वेदांत कहता है कि मृत्युरूपी निद्रा को भी स्थिति इसी प्रकार है। इस निद्रा के स्वर्ग नरक व उनके सुख दुख आदि स्वप्न कल्पना हैं, जिसके कि उत्पन्न करने वाले हमी हैं। इस विषय का प्रत्यक्ष अनुभव करने वाला ही मुक्त पुरुष है।

एक स्त्री जिसे वेदांत का ज्ञान था एक हाथ में अग्नि और दूसरे हाथ में पानी लेकर रास्ते में फिर रही थी। लोगों ने उसका यह विचित्र वेष देखकर पूछा कि बाई! यह क्या है? उसने उत्तर दिया कि इस अग्नि से मैं तुम्हारे स्वर्ग नरक, इंद्र, चंद्र को जला दूंगी और पानी से जलते हुये नरकों को शीतल करूंगी। मुक्तपुरुष स्वर्ग नरक की इन कल्पनाओं को पार कर जाता है और वह इनका कुछ भी हर्ष विषाद नहीं करता।

जो मनुष्य दूसरों को आघात पहुंचाते हैं वे वास्तव में अपने आपको घायल करते हैं।

❀ ❀ ❀ ❀

सच बोलने की आदत ठीक सुन्दर अक्षरों की लिखावट के समान है, जो केवल निरन्तर अभ्यास से ही बन आती है।

❀ ❀ ❀ ❀

समुद्र के किनारे टटोलने से तो घोंघा ही मिलेगा। मोती की चाह है तो गहरी डुबकी लगाओ।

❀ ❀ ❀ ❀

संसार जितना लक्ष्मी के पीछे पागल है, उसका सौ वाँ भाग परिश्रम करके ही वह परमार्थ का अचल धन प्राप्त कर सकता है।

भक्त-गाथा

सच्चा त्याग ।

[ले०—श्री पं० जगन्नाथप्रसाद अध्यापक, दाँता]

वह गरीब था। गरीब माता पिता के घर में जन्म लिया और गरीबों में ही पाला पोषा गया था। रूखे सूखे अन्न से पेट भर लेने और फटे टूटे कपड़ों में तन ढक लेने के अतिरिक्त यह नहीं जान पाया था कि ऐश आराम तथा शान शौकत किसे कहते हैं।

पड़ौस में धनवान रहते थे। पास के गार में बड़ी-बड़ी कोठियां थीं। नाच रङ्ग और विलासना के फव्वारे उनमें छूटते रहते थे। लक्ष्मी के द्वारा जो मौज मजे मिलते हैं वह सभी इन कोठियों में भरे रहते थे।

वह गरीब ब्राह्मण मुर्दा नहीं था। विद्या और बुद्धि में अद्वितीय गिना जाता था। धन वह कमा सकता न हो ऐसी बात नहीं थी वह चाहता तो बुद्धिबल से चांदी के किले खड़े कर सकता था। पर चाहता तब न ? उसकी आँखों का परदा हट गया था। मनुष्य जीवन चांदी बटोरने और तमाशा देखने के लिये नहीं है, उसका उद्देश्य कुछ ऊंचा है। उस परमलक्ष्य को प्राप्त करने के लिये दुनियांदारी को नमस्कार करना पड़ता है—ब्राह्मण ने भी वही किया। वह अपनी पत्नी समेत गरीबी की तपस्या करने लगा।

एक दिन परीक्षा का अवसर आया। प्रभु ने उनको परखना चाहा। उस दिन वे दोनों पति पत्नी कहीं दूर देश को जा रहे थे। धन से अभाव में लम्बी परदेश यात्रा कितनी कठिन होती है इसे युक्त भोगी ही जानते हैं। धनहीन यात्री पर आने वाली विपत्तियाँ पग पग पर उन्हें सता रही थीं।

चलते चलते कहीं निर्जन बन में एक अशर्फियों की थैली रास्ते में पड़ी हुई दिखाई दी। ऐसे स्थान पर पड़े हुए धन को भी भला कोई छोड़ सकता है ? पर नहीं ! वह सच्चा ब्राह्मण था। लोभ की एक लहर उसके मन में दौड़ी तो सही। पर दूसरे ही क्षण वह संभल गया। पराया धन बिना मालिक की आज्ञा के लेना पाप है। इन पाप पूर्ण ठीकरियों को वह नहीं ले सका।

ब्राह्मणी कुछ पीछे हट गई थी। उसने सोचा कहीं ब्राह्मणी को लोभ न आ जाय और लेने के लिये ललचा न जाय। इसलिए इस थैली पर धूल डालकर छिपा देना चाहिये। उसने पाँव के सहारे धूल खसकाकर थैली पर डाली और उसे छिपा दिया।

ब्राह्मणी ज्यादा पीछे नहीं थी। जब तक पति सोच विचार और दाब दूब में उलझा रहा तब तक पत्नी भी आ पहुँची। उसने पांव द्वारा धूलि खसका कर किसी पोटली पर डालने की क्रिया को देखा। बुद्धिमान स्त्रियाँ जिस प्रकार बात की बात में पति के मनोभावों को जान जाती हैं उसी प्रकार उसे इस घटना के रहस्य को जानने में देर न लगी। वह ताड़ गई—अवश्य ही इस पोटली में कुछ धन रहा होगा और मुझसे छिपाने के लिये यह किया जा रहा है।

पत्नी खिल खिला कर हँस पड़ी। पति के कन्ध पर हाथ रखते हुए उसने कहा—प्रभो ! सोने और धूलि में अन्तर क्या है ? आप धूलि को धूल से क्यों ढक रहे हैं ?

ब्राह्मण लज्जित हो गया। उसे अपने त्याग पर पूरा विश्वास न था। अयोग्यता के कारण जो अभाव रहता है उसी को कई पाखण्ड त्याग घोषित करते हैं। यह अभाव प्रलोप की परीक्षा में पिघल सकता है। विवेक पूर्वक किया हुआ सच्चा त्याग शुद्ध स्फटिक के समान है। विपत्ति के परीक्षा के समय वह मुरझाया नहीं दूना बिखरना है। ब्राह्मण को अपनी आशङ्का व्यर्थ सिद्ध हुई। ब्राह्मणी का त्याग अभाव का दंभ नहीं। वरन् उसी की भांति सच्चा त्याग था।

यह दम्पत्ति आगे चलकर बड़े प्रसिद्ध भक्त हुए प्रभु का दर्शन उन्होंने पाया और मोक्षगामी हुए इस भक्त का नाम था 'राँका बांका'।

———

वेदों का अमर सन्देश।

(श्री० पं० गोविन्दप्रसाद कौशिक)

तेन व्यक्तेन भुंजीथा। मागृधः कस्यास्विद्ध नम॥
यजु० ४०।१

सबसे पहले दूसरों की सहायता करो। परोपकार में व्यय करने के पश्चात् बचे हुये का खुद उपभोग करो। कभी लालच मत करो। लालच करने का परिणाम बहुत बुरा होता है। धन किसका है? इसका विचार करो। सब धन परमेश्वर का ही है।

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः॥
यजु० ४०।२

इस जगत् में सदा प्रतिदिन उत्तमोत्तम कार्य करने चाहियें। अपना अमूल्य समय आलस में व्यर्थ खोना अच्छा नहीं। आलस से हानि और पुरुषार्थ से सदा लाभ होता है। प्रत्येक मनुष्य को सौ वर्ष तक जीने का प्रयत्न करना चाहिये।

सम्यञ्चः सव्रता भूता। वाचंवदत भद्रया॥
अथर्व० ३।३०।३।

सदा आपस में मिलजुल कर रहो। झगड़ा कभी न करो। सब मिलकर अपना अपना कर्तव्य कार्य उत्तम रीति से करते रहो। सदा उत्तम भाषण किया करो। बुरे शब्दों का उच्चारण कभी मत करो।

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्। मा स्वसारमुत स्वसा॥
अथर्व० ३।३०।३

भाई अपने भाई के साथ कभी लड़ाई न करे। तथा बहिन अपनी बहिन के साथ झगड़ा न करे। भाई बहन में कभी झगड़ा न हो। सब आपस में मिल जुल कर प्रेम के साथ वर्ताव करें।

संगच्छध्वं संवदध्वम्। संवो मनांसि जानताम्॥
ऋ० १०।१९१।२

सब लोग मिलकर रहो मिलकर उत्तम भाषण करो और अपने मनों को ज्ञानवान् करो। कोई भी परस्पर द्वेष न करे। परस्पर बुरा भाषण न करे और कोई अज्ञानी न रहे।

प्रभु की माया।

(ले० मूलशङ्कर नरभेराम, ओझा)

गतांक से आगे

जो जानता है कि मैं नहीं जानता, पर कहता है कि मैं जानता हूं; वह झूठा है। जो जानता है कि मैं अंशरूप में जानता हूं और कहता है मैं जानता हूं, वह वास्तव में नहीं जानता है कारण कि पूर्णरुपेण जानना असम्भव ही है। जो जानता है कि मैं नहीं जानता और कहता है कि मैं नहीं जानता हूं वह सत्य कहता है। जो जानता है कि मैं अंशरूप में जानता हूं, और कहता है कि मैं ही जानता हूं, वह कुछ जानता है, पर है वह भी अधूरा ही।

यह भी प्रभु की माया है।

जो जानता है कि मैं जानता भी हूं और नहीं भी जानता और यही कहता भी है, वह औरों से अधिक जानता है। परन्तु जो जानता है मैं जानता भी हूं और नहीं भी जानता, इसी कारण चुप रहता है, किसी से कुछ नहीं कहता वह वास्तव में बहुत जानता है। इतना जानकर भी, जो प्रभु के प्रेम में सब कुछ भूल जाता है, वह प्रभु में लय हो जाता है, वह धन्य है। वही पूर्णतया जानता है, जो जानकर भी भूल गया है, जो भक्त है, अनन्य प्रेमी है। वह अब क्या बताये? उसके पास बताने की कोई बात ही नहीं है, उसके द्वन्द्व मिट चुके हैं अब कौन बताये और किसे बताये बताने को धरा ही क्या है।

यही प्रभु की माया है।

यन्नू न मर्श्यां गति मित्रस्य यायाँ पथा॥
ऋ० ५।६४।३

यदि सब मनुष्य परस्पर प्रेम पूर्वक वर्ताव करें तो निश्चय ही उन्नति को प्राप्त होंगे।

कस्ये मृताना अति यान्तिरिप्रं आयुर्दधानाः प्रतरं नवीयः
अथर्व० १२ ३.१७

जो मनुष्य अपनी आयु, पुरुषार्थ बढ़ाते हैं और अपने आपको ईश्वर की भक्ति से पवित्र बनते हैं उनके सब दोष दूर होते हैं।

दुखों को मोल मत लो।

(ले०—श्री गुणबिहारी जी)

जीवन में प्रवेश करने के पूर्व एक युवक बड़ा वैज्ञानिक बनने की अकांक्षा रखता है, पर जीवन के कठोर सत्य की चट्टानों पर उसकी वह अकांक्षा टूक-टूक हो जाती है और वह छोटी सी नौकरी पर किसी आफिस में आठ घंटे कलम घसीटता नजर आता है। एक युवक बड़ा व्यवसायी होने की उमंग रखता है, परन्तु जीवन में अपने गुजर के लिए अच्छा सहारा भी प्राप्त करने में असमर्थ रहता है। कोई बड़ा कुशल वक्ता बनना चाहता है परंतु उसका भाषण सुनने के लिए चार मित्रों की अपेक्षा पांचवां श्रोता नहीं मिलता! कोई बड़ा राजनीतिज्ञ बनना चाहता है, जो देश का भविष्य घड़ने का स्वप्न देखता हो, परंतु व्यावहारिक रूप में वह केवल अपनी बीबी और बच्चों पर ही शासन चलाता नजर पड़ता है! पोषित अकांक्षा और व्यावहारिक सत्यता के बीच का यह कटु अंतर, जहां दूर होने लायक है, वहां दूर किया जाना आवश्यक है।

परंतु खयाल रखने की बात यह है कि अपनी अकाँक्षा निर्धारित करने के पूर्व हमें स्वयं को ऊंचे टीलों पर दौड़ने का स्वप्न न देख, समतल भूमि पर विचरना चाहिये।

हमें जीवन में दो प्रकार के कष्टों का सामना करना पड़ता है,—शारीरिक और मानसिक, जिनमें कुछ अपरिहार्य और कुछ निवारण करने योग्य होते हैं। इनमें से प्रथम कठिनाइयों की बात में वैद्य शास्त्रियों और ड्रिल-मास्टरों पर छोड़ देता हूं तथापि यह तो सत्य है ही कि हममें से प्रत्येक जीवन में एक बंदी है। हम लोग अपनी शारीरिक और सामाजिक स्थिति से बंधे हैं। बीमार, वृद्धावस्था, मृत्यु, गरीबी, आवश्यकताओं की अपूर्ति और निराशाओं के धक्के खाते-खाते हम यह सबक जरूर सीख लेते हैं कि यह संसार हमारे लिये नहीं बना; आशायें और उनकी पूर्ति यहां समानान्तर चीजें नहीं है। इससे हमें भविष्य में जरा अधिक यथार्थवादी और व्यवहारिक बनने की शिक्षा मिलती है, जो संतोष की ओर ले जाने वाली है। त्याग का यह अनुशासन, कुछ कटु अवश्य है, परंतु एकबार इसके आधीन हो जाने से जीवन की कठिनाइयां अवश्य कम हो जाती हैं। त्याग से यहां मेरा तात्पर्य वह नहीं है, जो सामान्यतः लिया जाता है, बल्कि मानसिक अव्यवहार्य इच्छाओं का परित्याग है। मैं इस में इस सिद्धांत का व्यवहारिक कर्मयोग कहूंगा।

इस व्यवहारिक कर्मयोग का आचरण जरा कठिन अवश्य है, कारण मनुष्य स्वभावतः ही इनका लोभ संवरण नहीं कर सकता परंतु इस लोभ पर विजय प्राप्त करने से ही सुख प्राप्त किया जा सकता है। एक क्षण के विचार से ही यह समझ में आ सकता है कि हमारी अधिकाँश चिन्तायें जिनसे हम प्रतिदिन घुलते रहते हैं, जरा अधिक विवेक से काम लेने से विनष्ट हो सकती हैं। ये चिन्तायें प्रायः अनुचित आदतें, दूसरों की ओर बुरे रुख, कल्पित आत्म-महत्व और अविवेक पूर्ण नफरतों से उत्पन्न होती हैं।

ऐसे भी लोग होते हैं, जो अनेक बड़े आदमियों की भांति, सदा अपने अस्वास्थ्य का जिक्र किया करते हैं; अपने दुख का दुःखड़ा रोया करते हैं। इसी भाव के सदृश अभी 'पञ्च' में एक व्यंग चित्र निकला था जिसमें दर्शाया गया था कि एक स्त्री यह कह रही है कि "मेरा पति बिना दुख के प्रसङ्ग के कभी सुखी नहीं दीखता और उस प्रसंग में भी वह संतुष्ट नहीं दीखता।" यह आजकल की एक प्रकार की मनोवृत्ति ही बन गई है। ऐसे आदमियों को स्वास्थ्यप्रद स्थान की सैर या लम्बी छुट्टियां भी कुछ फायदा नहीं करतीं, उन्हें तो तभी लाभ प्रतीत हो जब इनकी यह मनोवृत्ति निर्मूल कर दी जाय। उन्हें समझाने की जरूरत है कि दुखी बनना श्रेष्ठता की कोई निशानी नहीं है—जीवन में स्वयं ही इतने अनिवार्य कष्ट और दुख हैं कि उनमें कुछ और जोड़ देने की जरूरत नहीं।

परंतु इन असाधारण लोगों के अलावा, जो दुःखी बने रहने में ही बड़प्पन समझते हैं, हम सब लोग छोटी-मोटी जरा जरा सी बातों की भी बड़ी फिक्र कर अपनी शक्ति का व्यर्थ अपव्यय किया करते हैं। कुछ लोग तो इतनी अधीर प्रकृति के होते हैं कि दैनिक चिंताओं की चिंता से भी अपने आपको मुक्त नहीं कर सकते। साधारण घटनाओं पर भी लोग अत्याधिक उत्तेजित हो उठते हैं, जिन्हें कि समझदार लोग कतई महत्व नहीं देते। उदाहरणार्थ कोई मनुष्य जरा रेल चूकते ही यह समझने लगता है कि प्रलय काल आगया,

तो कोई किसी दिन भोजन जरा अनुकूल न हुआ तो सारे घर को सिर पर ले लेता है। कोई मनुष्य नौकर द्वारा जरा कोई गलती हो जावे तो अपने आपको वश में नहीं रख सकता, हालाँकि यदि उस पर के अधिकारी उसको एक अष्टमांश बात कह दें तो वह इसमें अपना घोर अपमान और अपने साथ परले सिरे का दुर्व्यवहार समझेगा। कुछ ऐसे शक्की होते हैं कि ज़रा कोई चीज नहीं मिलते ही यह समझ कर चिंता समुद्र में गोते लगाने लगते हैं कि कोई उनकी चीजों का अपहरण करने का षडयंत्र रच रहा है, हालांकि वह चीज वह स्वयं ही कहीं रखकर भूल जाते हैं। इस सम्बन्ध में बरट्रैंड रसेल का यह वाक्य ध्यान रखने योग्य है कि "यदि मनुष्य अपनी जो शक्ति साधारण और सड़ी-सी बातों में खर्च किया करते हैं वही यदि अधिक उपयुक्त तरीके से खर्च करें तो साम्राज्यों का निर्माण और विनाश कर सकते हैं।" आगे वह कहता है कि समझदार आदमियों को यह खयाल भी नहीं होता कि "उनके नौकर ने फर्श साफ किया है या नहीं, रसोइया ने आलू पकाये हैं या नहीं या भंगी ने नाली साफ की है या नहीं।"

उपर्युक्त बातों का यह तात्पर्य नहीं कि हमें गलतियों का परिहार करने का यत्न न करना चाहिये, या किसी बात की ओर ध्यान ही न देना चाहिये। कहने का तात्पर्य यही है कि ये बातें ऐसी नहीं हैं, जिनसे आप मानसिक मूर्छा ले आवें या अपने मस्तिष्क पर अनावश्यक बोझ लाद लें। चिढ़ जाने पर भी अपना मिजाज न खाना संस्कृति की निशानी है। मिजाज की गर्मी एक प्रकार का अस्थायी पागलपन है। घर-गृहस्थी की चिंतायें, जो दस में से नौ निवार्य होती हैं और अनावश्यक दुराकांक्षा, दुर्भाव या जलन, व निराशा एवं असफलता ऐसी चीजें नहीं हैं जिनसे स्वयं पर चिंताओं का पहाड़ तोड़ लिया जाय। हम इस बात पर बड़ा संताप करते हैं कि हमारी योग्यता की कद्र ही नहीं करता, फलतः हम दूसरे लोगों को मूर्ख, गंवार या कृतघ्न समझ मन में खार खाने लगते हैं। फिर भी कैसा विरोधाभास है कि हम अपने ऊंचे उठने के लिये उन्हीं से सहयोग और समर्थन की आशा रखते हैं! इस प्रकार निष्प्रयोजन उधेड़बुनों से बचने के लिये आवश्यक है कि हम जीवन में अधिक विवेक और संयम से काम लें। इसी को हम दूसरे शब्दों में जीवन में सरसता कह सकते हैं।

जीवन की सरसता के यह माने नहीं कि आप [illegible] जिसकी भद्द या मजाक उड़ावें, प्रत्युत इसका अर्थ है जी[illegible] में सदा प्रफुल्लित रहने की भावना पैदा करना। ऐसा म[illegible] जो कुछ करेगा उसमें अनावश्यक आत्म-महत्त्व, दूसरों द्वारा कद्र या प्रशंसा आदि का भाव न रखेगा। वह सं[illegible] के साथ हंसेगा— उसकी तरफ नहीं। वह अपनी दुख कहानियों को बिना पश्चात्ताप, खेद या ढंका पीटने के सुप[illegible] अपने उर में रखेगा। वह किसी विषय में असफल होने [illegible] स्थिति और हाथ रुमाल या कालर-बटन खोने की स्थि[illegible] दोनों में एकसा संयत और गंभीर रहेगा। वह रेल में अ[illegible] छुत्ता खो जाने का दुख और अपने प्रतिस्पर्द्धी का व्यंग-प्रह[illegible] दोनों समान रूप से शांति से सहेगा। वह जीवन का केव[illegible] यही दृष्टिकोण रखेगा कि यदि कोई चिंता अपरिहार्य है उसकी चिंता न करनी चाहिये और यदि वह निवारण कर[illegible] योग्य है, तो निवारण करने का प्रयत्न करना चाहिये।

इस प्रकार चिड़चिड़ेपन और खीझ से मुक्त मनु[illegible] अपनी दैनिक तकलीफों को संयम के साथ—बल्कि प्रसन्न[illegible] के साथ सहन कर सकेगा। उसके सामने यदि कोई घमं[illegible] मित्र अपने किसी काम की डींग मारता है, तो वह खीझेग[illegible] नहीं; यदि कोई पुराना चुटकला कहता है, तो भी वह न[illegible] खीझेगा, उसका धोबी कोई कपड़ा फाड़ लावे तो भी [illegible] वैसा ही शांत रहेगा। कोई काम बिगड़ने पर वह केवल य[illegible] सोचेगा कि ऊंह, यह परम्परा तो संसार के आरम्भ से [illegible] चली आई है; जब देवताओं ने भी दुख सहे हैं तो हमारी [illegible] बिसात ही क्या? कोई काम यदि बिगड़ने से बचाना है [illegible] पहिले ही उसकी यथेष्ट सावधानी लेनी चाहिये,—कि[illegible] पछताना या दुखित होना गैर वाजिब है।

विघ्न-बाधाओं,—कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करने [illegible] यही तरीका है। मनुष्य को यह सोचना चाहिये कि आ[illegible] जो हमें कष्ट मालूम होता है वह कल बहुत साधारण दीखेग[illegible] और हमारे जो घोर दुख है, उनका भी संसार की दृष्टि [illegible] मापने से कोई मूल्य नहीं है। इस प्रवृत्ति का अर्थ अप[illegible] आपको ऊँचा उठाना है, और किसी बात का अवैयक्ति[illegible] दृष्टिकोण से भाव ग्रहण करना है। यह मानसिक शिक्षण का एक विषय है जिसके द्वारा मनुष्य अपने जीवन में बहुत कुछ शाँति, संतोष और सुख प्राप्त कर सकता है।

———

कथा—

विपत्ति धर्म ।

कुरुदेश में उस वर्ष बड़ी भयंकर उपल वृष्टि हुई थी । ओलों ने सारी फसल को नष्ट कर दिया था। सारी खेती चौपट हो गई, किसानों के घर में अन्न का दाना न रहा। लोगों का धैर्य टूट गया। भयंकर दुर्भिक्ष के मारे असंख्य पशु मर चुके थे। मनुष्य अपना प्राण बचाने के लिए दूर देशों को भागने लगे।

धर्माचार्य चक्र के पुत्र उषस्ति के सामने भी यही समस्या उपस्थित थी। जब उन्हें अन्न प्राप्त होने का कोई उपाय न मिल सका तो अन्य सहस्त्रों नर नारियों की भाँति वह भी देश छोड़कर धर्मपत्नी आटिकी के साथ चल दिये। इधर उधर भटकते भटकते एक अन्तजों के एक ग्राम में जा पहुँचे। उस समय भूख के मारे उनके प्राण निकले जा रहे थे, क्षुधा की ज्वाला से समस्त शरीर जला जा रहा था।

ऐसे समय में उन्होंने ग्राम में भीतर प्रवेश किया तो देखा कि एक अन्त्यज उबले हुये उर्द चबा रहा है। उन्हें देखकर उषस्ति के मुंह में पानी भर आया और वे अन्त्यज से उर्द मांगने लगे।

अन्त्यज ने कहा—जिन्हें मैं खा रहा हूं उन झूठे उर्दों के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। तब मैं आपको कहाँ से दूं? उषस्ति ने उत्तर दिया— मुझे इनमें से ही थोड़े से दे दो। उसने ऋषि की इच्छानुसार झूठे उरदों में से कुछ दे दिया उन्हें खाकर उन्होंने अपनी क्षुधा बुझाई।

जब वे भोजन कर चुके और शरीर सुस्थिर हुआ तो अन्त्यज ने जल भरा पात्र भी उनके सामने उपस्थित किया और नम्रता पूर्वक प्रार्थना की भगवन्! लीजिये यह जल भी ग्रहण कीजिये। किन्तु ऋषि ने उसकी इस प्रार्थना को स्वीकार न किया और जल पीने से इनकार कर दिया।

अन्त्यज को इस पर बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने पूछा जब आप मेरे झूठे उरंद खा चुके हैं तो जल पीने में क्यों आपत्ति करते हैं?

ऋषि ने कहा— वह विपत्ति धर्म था। विपत्ति धर्म विपत्ति के समय के लिए होता है सदा के लिये मर्यादित धर्म का पालन करना होता है। जब आपत्ति थी तब झूठा अन्न खाया गया किन्तु अब जल तो अपनी इच्छानुसार अन्यत्र भी प्राप्त कर सकता हूँ इसलिये विपत्ति धर्म पालन करने की आवश्यकता नहीं।

आज प्रश्न उपस्थित होता है कि जब हिन्दू जाति पर चारों ओर से संकट की घटायें आ रहीं हैं और जाति तथा धर्म का नाम ही मिटना चाहता है क्या किसी विपत्ति धर्म का अविर्भाव नहीं किया जा सकता? जब सारे राष्ट्र का ही सर्वनाश उपस्थित हो रहा है तब भी क्या कुछ मजहबी परिपारियों को ढीला न करने की जिद पर हमें अड़ा रहना चाहिये?

इतिहास महर्षि उषस्ति के शब्दों में कहता है कि 'नहीं।'

—उपनिषद् के आधार पर

आराम मुर्दों के लिए है और काम जीवितों के लिए।

❀ ❀ ❀ ❀

मनुष्य विचारशील होने से मनुष्य होता है और निःस्वार्थ कर्म करने से वही देवता भी हो सकता है।

❀ ❀ ❀ ❀

जीवन एक प्रश्न है और मरण उसका उत्तर।

❀ ❀ ❀ ❀

जो अपने कर्तव्य के पालन में तत्पर नहीं रहते वे मनुष्य रूप में पशु हैं।

❀ ❀ ❀ ❀

जिस प्रकार हवा की संगति से धूल आकाश तक पहुँच जाती है और जल के संयोग से नीचे आकर कीच में मिल जाती है उसी प्रकार सुसंगति से मनुष्य का उत्थान और कुसंगति से पतन होता है।

मृत्यु से डरें क्यों ?

(ले०—श्री शिवदत्तजी शास्त्री, जैतापुर)

मृत्यु क्या है इसके सम्बन्ध में अनेक प्रकार की बातें जनता में फैली हुई हैं। परन्तु जीवन और मृत्यु का वास्तविक रूप क्या है ? इसके ऊपर पुराने आचार्यों ने बहुत कुछ लिखा है। आत्मा को नित्य कहा गया है और शरीर अनित्य बतलाया है। आत्मा और पाञ्च भौतिक शरीर के संयोग का नाम जीवन है और इनके वियोग का नाम मृत्यु है। यदि मृत्यु का परिणाम सोचा जावे तो यह सुखप्रद ही ठहरती है। जीवन और मृत्यु दिन और रात के समान है यह सभी जानते हैं कि दिन काम करने के लिये और रात आराम करने के लिये है। मनुष्य दिन में काम करता है काम करने से उसके अन्तः-करण मन बुद्धि आदि वाह्यकरण आँख, नाक, हाथ, पांव आदि सभी थककर काम करने के अयोग्य हो जाते हैं। और तब तक कुछ भी नही कर सकता इस प्रकार शक्ति का ह्रास होने पर रात्रि आती है दिन में जहाँ मनुष्य के शरीर के भीतर और बाहर की सभी इन्द्रियाँ अपना काम तत्परता से करती थीं अब रात्रि आने पर मनुष्य गाढ़ी निद्रा में सो जाता है अन्तःकरण और बाह्यकरण सभी विश्राम करते हैं। काम करने से जैसे शक्ति का ह्रास होता है वैसे ही विश्राम से शक्ति का सञ्चय होता है। पुनः दिन आने पर मनुष्य उन शक्ति से काम लेता है फिर रात्रि आने पर शक्ति का भण्डार भर दिया जाता है। यह काम भगवान् की शक्ति से बिना किसी भूल के अनादि काल से चला आ रहा है। इसी प्रकार जीवन काम करने के लिये और मृत्यु विश्राम करने के लिये है। मनुष्य सारे जीवन काम ही काम करता रहता है जरा भी विश्राम नहीं लेता है। बालकपन से लेकर जीवन के अन्तिम समय तक आत्मा को चैन नहीं मिलता है। वृद्धावस्था में काम करने के पुर्जे क्षीण होने लगते हैं बड़ी कठिनता से काम करते हैं अनेकों पुर्जे ऐसे निकम्मे और नष्ट भ्रष्ट हो जाते हैं कि उनके सारे काम ही बन्द हो जाते हैं। जब मनुष्य किसी काम करने योग्य नहीं रहता है दिन रात चारपाई पर पड़ा रहता है तो भी चिन्ता चिता से, तृष्णा की भँवर से, मुक्ति नहीं पाता है। शक्ति के क्षीण हो जाने से वह अनेकों कष्ट पाता है तभी मृत्यु देवी आकर मनुष्य पर कृपा करती है। और आराम देकर निकम्मापन दूर करती है। जिस प्रकार मनुष्य रात्रि में आराम करके प्रातःकाल नवीन शक्ति, नवीन स्फूर्ति को लेकर जाग उठता है उसी प्रकार जीवन रूपी दिन में काम करके थककर मृत्यु रूपी रात्रि में विश्राम करके मनुष्य जीवन के प्रातःकाल में नवीन शक्ति और सामर्थ से मुक्त बाल्यावस्था को प्राप्त होता है। जहाँ बुढ़ापे में हाथ पाँव हिलाना कठिन होगया था सारा शरीर नष्ट-भ्रष्ट हो रहा था जो दूसरों के देखने में भयङ्कर था वही मृत्यु से विश्रान्त हो मनोहर मृदु दर्शनीय रूप में परिणत हो गया। बालक को जब देखिये वह कुछ न कुछ चेष्टा करता होगा। इस प्रकार अच्छी तरह समझ में आगया कि मृत्यु दुख देने के लिए नहीं सुख देने के लिये ही आती है।

गीता में भी भली भांति दर्शाया गया है—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति-नरोऽपराणि। तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥

अर्थात् जिस प्रकार मनुष्य फटे पुराने वस्त्र छोड़कर नए वस्त्रों को ग्रहण कर लिया करता है उसी प्रकार आत्मा जीर्ण और निकम्मा शरीर छोड़ कर नया शरीर ग्रहण कर लेता है। भला कभी किसी को देखा या सुना है कि पुराने वस्त्रों को छोड़ कर नये वस्त्रों के ग्रहण करने में उसे दुःख या क्लेश हुआ हो बल्कि नए वस्त्रों के ग्रहण करने में सभी प्रसन्न होते हैं। फिर भला आत्मा निकम्मे और जजर शरीर को छोड़ कर नए और पुष्ट शरीर के ग्रहण करने से अप्रसन्न और दुःखी कैसे हो सकता है परन्तु संसार में देखने में ऐसा आता है कि अनेकों मनुष्य सैकड़ों

कष्ट उठा रहे हैं तन जर्जर हो गया है न आँखों से दिखाई देता है और न कानों से सुनाई देता है यदि उनकी मृत्यु हो जावे तो अच्छा परन्तु मौत का नाम सुन कर डरते हैं और यदि कोई उनसे मरने की बात कहे तो वे बुरा मानते हैं। परन्तु मृत्यु के समय होने वाले दुःख का कारण मृत्यु है अथवा और कोई यह विचारणीय है। वास्तव में ममता से दुःख होता है मृत्यु से नहीं। संसार में जितने पदार्थ मनुष्य को मिले हैं वे सब प्रयोग मात्र के लिये हैं। यदि कोई उनको अपना ही मान कर छोड़ना न चाहता हो वही दुःख उठाएगा। एक मनुष्य किसी जहाज पर सवार होता है उसे प्रयोग के लिये उसमें कई चीजें मिलती हैं यात्रा के बाद यदि वह उन वस्तुओं में ममता जोड़े और उनको छोड़ना न चाहे तो उसे दुःख के सिवा और क्या मिलेगा। और जो यात्रा के बाद चुपचाप किसी वस्तु से मोह न लगा कर चल देते हैं उन्हें कोई कष्ट प्रतीत नहीं होता। इसी प्रकार मृत्यु के समय जिन्हें अपने शरीर, धन, कुटुम्ब से ममता है उसे छोड़ना नहीं चाहते हैं वह दुःख का अनुभव करते हैं। और जिन्होंने समझ लिया कि यह मेरा नहीं यह तो सब कुछ मुझे मार्ग में सुविधा के लिये मिला था यह तो मेरा है ही नहीं उसे मृत्यु से कोई कष्ट नहीं होता। क्योंकि यदि कोइ किसी वस्तु को छोड़ना न चाहे और कोई छुड़ा ले तो उसे बड़ा कष्ट होता है और यदि वह स्वयं ही छोड़ने को तैयार हो तो किसी के छुड़ा लेने पर उसे कुछ भी दुःख न होगा। इस प्रकार मृत्यु से डरना न चाहिये क्योंकि मृत्यु सुख देने वाली है परन्तु तभी जब कि सांसारिक पदार्थों में प्रयोग के अतिरिक्त आसक्ति, माया, ममता न हो। इसलिये मनुष्य को ममता के चक्र से अपने को मुक्त रखना चाहिये कि जिससे मरने में कष्ट न हो।

दूसरों का सौभाग्य देख कर ईर्षा मत करो। दुनियां में ऐसे लोगों की भी कमी नहीं जो तुम्हारा स्थान पाने के लिए भी लालायित हैं।

पूरा और खरा काम।

[श्रीमती लिली एल० एलन]

किसी भी स्त्री या पुरुष के वास्ते इससे अधिक लज्जा और गिरावट की बात क्या होगी कि उसे एक काम को दुबारा करने के वास्ते कहा जाय कि उसने अपना काम ठीक तौर से नहीं किया है; अधूरा किया है। जो आदमी सम्मान प्राप्त करने की इच्छा करता है उसे कभी किसी काम को अधूरा या रद्दी न करना चाहिये। जो आदमी अपने मालिक की उपस्थिति में तो ठीक काम करता है किन्तु उसके पीठ फिरते ही सुस्ती से भद्दा काम आरम्भ करता है वह कभी बड़ा नहीं बन सकेगा, सद्गुण उसे दूर से ही प्रणाम करेंगे।

उच्च आदर्शोंवाला आदमी हमेशा एक खरे आदमी के समान काम करता है, किराये पर रखे हुये आदमी के समान नहीं। 'मुझे इतने पैसे मिलते हैं वैसा ही मुझे काम करना चहिये' इस विचार से प्रेरित होकर वह कभी अपनी कारीगरी को बट्टा न लगावेगा। वह अपनी कला की अच्छाई को मजदूरी के पैसों से नाम कर खराब न करेगा। उसे अपनी तरक्की के लिये न तो षड़यंत्र बनाने की जरूरत होगी और न वेतन बढ़ाने के लिये किसी से कुछ कहना पड़ेगा। क्योंकि दुनियाँ इस कायदे को मानने के लिये बाध्य है कि जो आदमी योग्यता रखता है उसे पुरस्कार अवश्य मिलना चाहिये।

पूरे और खरे काम के सामने सबको झुकना पड़ता है जो छोटे से छोटा काम निकम्मा रद्दी अधूरा किया जा सकता है वही परमात्मा की सेवा या अपना कर्तव्य समझ कर सारे चातुर्य तथा कला से अच्छी तरह भी किया जा सकता है।

सोना बनाने वाले तांत्रिक

(१४ मार्च सन् ३७ के 'अभ्युदय' से उद्धृत)

तांत्रिक विद्या पर से आज कल के पढ़े-लिखे पाश्चात्य सभ्यता के लोगों का विश्वास बिल्कुल उठ गया है। इसका कारण सम्भवतः यही है कि आजकल अनेक लोग झूठमूठ में तांत्रिक बन कर ठगने के उद्योग में लगे रहते हैं। कैप्टन जार्ज कार्टर एक ब्रिटिश हैं; आप शिक्षित तथा भारतीय तांत्रिक विद्या तथा बाजीगरी के बड़े प्रेमी हैं। अपने इसी प्रेम के कारण आपने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया है। आपने अपनी देखी हुई कुछ घटनाओं का वर्णन किया है, जो बहुत रोचक है। जब वे रंगून में थे तब उन्हें एक स्त्री से परिचय हुआ। वह उनके घर के सम्मुख ही रहती थी। उसे बिलकुल खालिस सोना बनाने की विधि—जिसके लिए युगों से बहुत रसायनि प्रयोग करते-करते मर गये और नहीं जान पाये-ज्ञात थी; परन्तु सबसे अधिक आश्चर्य की बात तो यह थी कि उसे अपने इस गुण द्वारा धन पैदा करने की तनिक भी लालसा न थी। यह तो एक दूसरी ही अप्राप्य वस्तु—अमृत—की खोज में थी, जिससे मनुष्य जाति दीर्घजीवी बनाई जा सके।

मिस्टर कार्टर का पहले पहल इस विलक्षण स्त्री से इस प्रकार परिचय हुआ कि वे बौद्ध जीवन से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने बुद्ध की मूर्ति ही अपने घर में प्रतिष्ठित कर ली। इस विषय में किसी बौद्ध से राय लेना चाहते थे। उनके सम्मुख ही यह स्त्री रहती थी। अतएव उनका उससे परिचय हो गया। उसने इनकी हर तरह से सहायता की।

इस स्त्री का नाम श्रीमती वारटन था। वह एक अंगरेज़ की विधवा थी, परन्तु वह स्वयं साइनोचर्मीज जाति की थी। यह एक बहुत बड़े बाग़ में केवल अपनी एक परिचारिका के साथ रहती थी, जो स्वयं भी उसी की अवस्था की थी। वह दिन भर या तो भजन में मग्न या अपनी प्रयोगशाला में रहती थी। उसकी प्रयोगशाला एक गुप्त स्थान पर थी। बाग़ में एक कुटी थी जिसमें केवल एक चूल्हा था। बहुत से लोगों ने उसे सोना बनाते देखा। क्योंकि उसे कोई काम छिपाकर करने की आदत नहीं थी।

उसकी सोना बनाने की विधि भी विचित्र थी। वह पारा को किसी ऐसे द्रव पदार्थ में डाल देती थी वह ठोस बन जाता था। तब वह इसकी छोटी छोटी गोलियां बना लेती, इन गोलियों को वह एक प्रकार के अन्य द्रव पदार्थ में डाल देती कुछ समय पश्चात् वे गोलियां फूलतीं, परन्तु वह उसे आग में रक्खे रहती अन्त में जब वह मंत्रों से फूंक कर उसे निकालती तो वह शुद्ध सोना हो जाता। मिस्टर कार्टर का कहना है कि इस सोने की उन्होंने हर प्रकार से परीक्षा कराई, परन्तु उसमें कोई कमी न थी।

एक दिन प्रातःकाल यह स्त्री मरी हुई पाई गई। लोगों ने बहुत प्रयत्न किया कि सोना बनाने की कोई विधि ज्ञात हो जाय, परन्तु सब प्रयत्न व्यर्थ हुये।

इसके अतिरिक्त मि० कार्टर एक अन्य घटना का भी वर्णन करते हैं, परंतु भारतीयों के लिये वह कोई नई बात नहीं है। वे लिखते हैं कि जब वे दारजिलिंग के लामा मठ में थे तब यह घटना हुई। दारजिलिंग में बालकों का एक स्कूल है जिसमें यूरोपियनों के बच्चे शिक्षा पाते हैं। इसमें कई अध्यापिकायें हैं। एक समय की घटना है कि उस स्कूल में ग्लोरिया नामक एक छोटी सी बालिका भी पढ़ती थी। वह लगभग ६ वर्ष की थी। उसकी तीव्रता तथा आकर्षण के कारण प्रत्येक अध्यापिका उसे बहुत प्यार करती थी। प्रधान अध्यापिका तो उसे बहुत ही चाहती। एक दिन वह अपने स्कूल में झूलना पर झूल रही थी। उसकी अन्य सहेलियाँ झुला रही थीं। उसने अपनी सखी से खूब ज़ोर से झुलाने को कहा। उस बालिका ने झूला को खूब ज़ोर से झुलाया, दूसरे ही क्षण झूला बहुत ऊपर गया और ग्लोरिया पृथ्वी पर आकर गिर पड़ी। उसके हाथ–पैर टूट गये और वह मूर्छित हो गई। अध्यापिकायें समाचार पाते ही दौड़ आईं और बालिका को उठा ले गईं। बहुत से डाक्टरों ने प्रयत्न किया, परंतु ग्लोरिया के पैर टूट गये थे उसकी मृत्यु निकट थी। उसे कोई भी न अच्छा कर सका। सब लोग हताश हो गये।

उसी समय किसी ने लामा मठ के साधुओं की तांत्रिक का ज़िक्र किया। प्रधान अध्यापिका को भला उस पर कैसे विश्वास होता; परन्तु बहुत कुछ कहने सुनने पर ये राजी हुईं और एक आदमी लामा मठ के प्रधान के पास भेजा गया। उस आदमी ने आकर मिस्टर कार्टर से सब बातें कहीं।

मिस्टर कार्टर ने प्रधान लामा से सब कुछ निवेदन किया। प्रधान ने आंख बन्द कर के कहा—'बेटा, हमें उस बालिका को अच्छा करना होगा ?'' तत्क्षण तीन साधु ग्लोरिया के स्थान पर भेजे। उन्होंने ग्लोरिया के कमरे में प्रवेश किया तथा अन्य सबको कमरे से बाहर निकाल कर दरवाजा बन्द कर लिया। बाहर बहुत से लोग खड़े हुये थे; परंतु बाहर से केवल तालियां बजाने अथवा उनके मंत्र पाठ की ही आवाज सुन पडती थी।

लगभग एक घन्टे पश्चात दरावजा खुला। एक साधु ग्लोरिया को गोद में लिये था। वह हंस रही थी। उसने ग्लोरिया को गोद से उतारा। परन्तु अब वह वही ग्लोरिया न थी उसके पैर ठीक हो गये थे। ऐसा ज्ञात होता था कि वह अभी खेल कर आई हो।

भारतीय तांत्रिक विधान द्वारा ऐसे अनेक चमत्कार हो सकते हैं, परन्तु यह कोई जादू न था। यह तो एक यौगिक शक्ति है। आज भी भारत में ऐसे अनेक योगी हैं तो आश्चर्य-जनक कार्य कर सकते हैं।

दुख मनुष्यत्व के विकाश का साधन है। सच्चे मनुष्य का जीवन दुख में ही खिल उठता है। सोने का रंग तपाने पर ही निखरता है।

❀ ❀ ❀ ❀

ज्यों ज्यों मनुष्य का अन्तःकरण निर्मल और निष्पाय होता जाता है, त्यों त्यों उसे अपने छोटे छोटे दोप भी दिखाई देने लगते हैं। अपने दोषों की स्वीकृति से चित्त को बड़ा समाधान होता है। इससे वह अपने प्रति कठोर और दूसरे के प्रति उदार होता जाता है।

❀ ❀ ❀ ❀

स्वर्ग और पृथ्वी में बहुत भेद नहीं है। श्रम और प्रेम दोनों साथ हों तो स्वर्ग बन जाता है और ये दोनों प्रथक हो जायं तब पृथ्वी बनती है।

❀ ❀ ❀ ❀

जिस मनुष्य में ज्ञान का संचय का क्रम ठीक नहीं है वह जितना अधिक विद्वान् बनेगा उतना ही अधिक भ्रम में पड़ेगा।

कहानी

एक रोटी पर तसल्ली करो

(महात्मा शेख सादी के गुलिश्ताँ से अनुवादित)

किसी नगर में दो भाई रहते थे। उनमें से एक राज दरवार में नौकर था। दूसरा अपने हाथ से स्वतन्त्र मेहनत करके रोटी कमाता और पेट भरता था।

जो राज दरवार में नौकर था वह अमीर हो गया। उसके घर में सोने की अशर्फियाँ और चाँदी के वर्तन जमा थे। कीमती जेवर और जवाहिरातों से कोठरियाँ भरी हुई थीं। ऐशोआराम से सभी सामान उसके यहाँ मौजूद थे।

एक दिन उसने अपने छोटे भाई को देखा जो कड़ी मेहनत करके किसी प्रकार अपना पेट भरता था। उसने उससे कहा—भाई तुम भी नौकरी क्यों नहीं कर लेते ? जिससे इस मेहनत से छुटकारा मिले और आराम की जिन्दगी बसर करो।

लेकिन छोटा भाई दूसरी ही मिट्टी का बना हुआ था। उसने सिर ऊंचा उठाया और उससे कहा—तुम मेरी तरह मेहनत क्यों नहीं करते ? ताकि गुलामी की हतक से बच जाओ। बुजुर्गों का कहना का कहना है कि पीठ पर सोने की चपरास बाँधकर नौकरी करने के बजाय जौ की रूखी रोटी खाना और जमीन पर पड़ रहना बहतर है। अमीरों का झुक-झुक कर अदब बजाने की बनस्पित अपने हाथ से गारा सानना अच्छा है।

\+ \+ \+ \+

हमारी बेशकीमती जिन्दगी यह सोचते-सोचते व्यतीत हो जाती है कि गर्मी में क्या खायंगे और जाड़े में क्या पहनेंगे। हे हमारे बहादुर पेट ! एक रोटी पर तसल्ली करो ताकि किसी की गुलामी में पीठ को न झुकाना पड़े।

कथाः—

नास्तिक मत कैसे चला?

(ले०—श्री हरप्रसाद कपूर)

एक बार देवतागण असुरों के अत्याचार से बड़े दुखी हुये। बलसे जब उन्हें परास्तन कर सके तो कोई चाल ढूंढ़ने लगे। अपनी चिन्ता को लेकर वे गुरु बृहस्पति के पास पहुँचे और अपनी सारी दुख कथा कह सुनाई और प्रार्थना की कि कोई ऐसा उपाय कीजिये जिससे असुर अपने आप नष्ट हो जायं। लड़ कर तो वह हमसे जीते नहीं जाते।

देवाचार्य गुरु को राजनीति से काम लेना पड़ा। उन्होंने कहा– मैं असुरों में उलटा ज्ञान फैलाऊंगा जिससे वे पथ भ्रष्ट होकर अपने आप दुर्गति को प्राप्त होंगे। देवताओं के मुख पर प्रसन्नता की एक लहर दौड़ गई।

गुरु बृहस्पति ने अपना रूप बदला और अपना चार्वाक नाम रखकर अनीश्वरवाद का प्रचार करने लगे। उन्होंने इस मिथ्या सिद्धाँत के समर्थन में बड़े बड़े ग्रन्थों की रचना कर डाली। देवता लोग छद्मवेष धारण कर असुरों में नास्तिक मत का प्रचार करने लगे। उन्होंने सिद्ध किया कि– "यह शरीर ही ब्रह्म। अन्न रूपी ब्रह्म से उत्पन्न होने के कारण देह ही आत्मा है। इसलिये सब प्रकार से देह को सुख देना चाहिये। खाना, पीना और मौज उड़ाना ही असली धर्म है। शरीर ही आत्मा और ब्रह्म है।"

देवताओं से टक्कर लेने वाले असुर भी बिलकुल मूर्ख न थे। उनकी समझ में यह सिद्धांत नहीं आया। एक असुर ने मरा हुआ कुत्ता लाकर चार्वाक के ऊपर ला पटका और कहा "क्या यही तुम्हारा ब्रह्म है?"

चार्वाक मुनि को इस पर बड़ा क्रोध आया। सड़ा हुआ कुत्ता ऊपर गिरने से उनका तमाम शरीर अपवित्र हो गया। पर कहते क्या? उनके पास कोई उत्तर न था।

दुबारा उन्होंने सिद्धांत स्थिर किया कि "मृत देह ब्रह्म नहीं है। जीवित शरीर ब्रह्म है।" इस पर भी असुरों को संतोष नहीं हुआ। उनमें एक जीवित कुत्ते का बच्चा ले आया और चार्वाक के मुंह से उसका मुंह सटा दिया। वे फिर क्रोधित हुये पर कहते क्या? देहधारी ब्रह्म के मुंह चाट लेने पर क्या अनर्थ बताते?

तीसरी बार उन्होंने कहा– "शरीर में प्राण वायु है जि प्राणमय कोष है वही ब्रह्म है। "तब एक असुर ने चार्वा के मुंह के पास अपना मुंह ले जाकर बड़े जोर से फूं मारी। इससे भी क्रुद्ध हुये पर अपने ही मत का खंडन कै करते?

चौथी बार उन्होंने बताया कि शरीर में मन है। जि मनोमय कोष कहते हैं। यही ब्रह्म है। "उस समय तो कि ने कुछ नहीं कहा पर जब रात्रि के समय चार्वाक सोने च तो असुरों ने बहुत सी लकड़ियां जलानी शुरू कर दीं इ पर चार्वाक को कुछ आशंका हुई। उन्होंने कहा– यह क्य करते हो? असुरों ने कहा भगवन्! सुप्तावस्था में मन व लय हो जाता है इसलिए जब आप सो जावेंगे तब आपक अग्नि से जला दिया जायगा। इतना सुनना था कि गुरु ज पोथी पत्रा लेकर उलटे पैर भाग आये।

अब की बार उन्होंने अपने सिद्धांतों का खूब पारिशो किया और उसमें जहां कहीं शंका सन्देह थे उनका ब बुद्धि पूर्वक समाधान तैयार किया। अब की बार उन्होंने य सिद्धांत तय किया कि "शरीर का आनन्द मय कोष ब्रह्म औ शरीर आत्मा है। इसलिये इन्हीं की पूजा में दत्त चित्त रहन धर्म है।"

इतने अपमानों के बाद घोर परिश्रम के साथ देवाचार ने जो कूटनीति के साथ मत निर्धारित किया था वह अब क बार व्यर्थ न गया बहुत असुर उस भ्रम में पड़ गये औ नास्तिक मत के अनुयायी हो गये। चारों ओर चलने वा हवा में जिस प्रकार बादल इधर उधर उड़ता हुआ नष्ट ह जाता है वही बात ईश्वर और आत्मा का आस्तित्वन मानने पर होती है इसे देवाचार्य भली भांति जानते थे।

हुआ भी ऐसा ही। नास्तिकों का एक मात्र उद्देश्य शरीर का पोषण और इन्द्रियों को तृप्ति करना बन गया प्रज्वलित भोगाकांक्षा में जल जलकर असुर कुछ ही दिन में अपने आप विनष्ट हो गये।

आज भी उस चार्वाक मत को प्रकट या गुप्त रूप से अनेक मनुष्य मानते हैं और अनेक प्रचारक उसका प्रचा करते हैं। मालूम नहीं भ्रम के कारण यह सब हो रहा है य परमात्मा को उस पूर्व कथा की पुनरवृत्ति करानी मंजूर है।

स्वर योग से रोग निवारण

(श्री नारायण प्रसाद तिवारी 'उज्जवल' कान्हींवाड़ा)

गताङ्क से आगे

——:०:——

मनुष्य के पास जब रुपयों का खजाना भरा रहता है बिना सोचे खूब खर्च कर फिर खाली तिजोरी देखकर पश्चाताप करता है। किन्तु गया वक्त हाथ फिर आता नहीं! यही हाल श्वास का है कि निकल गई सो निकल गई, उसकी पूर्ति कृत्रिम गैस भरने से नहीं होती, वायु ईश्वर और प्रकृति की उच्च दैनगी है। उच्च गगन से धूलि कण तक अनन्त नक्षत्र से लेकर जुगनू मण्डल तक पशु पक्षी कीट पतङ्गादि इसका स्वच्छन्द उपभोग करते हैं श्वास वायु का ठीक-ठीक उपयोग करो उसका सच्चा मूल्य आंको. श्वास श्वास में परमानन्द का रस पान करो।

पूर्व काल में अगणित योगीश्वर हो गये हैं जिन्होंने अपने स्वर योग द्वारा ध्यानस्थ होकर देह के भीतर की स्नायविक केन्द्रों को देख और समझ लिया था। वे अपने श्वास क्रिया द्वारा आकाश में पक्षियों के समान उड़ते, जल पर थल के समान डूबते थे, वीर हनुमान जी पवन सुत कहलाये, इसी योग द्वारा सुमेरु पर्वतको लेकर कागज की पतङ्ग समान उड़ाया था। वर्तमान रेडियो, तार आदि इसी वायु महत्ता के क्षुद्र चमत्कार हैं, सर्प स्वर साधक होने से ही दीर्घ जीवी है और कुँभक शक्ति बलशाली होने के कारण ही दीर्घ काल तक निराहार जीवन धारण कर सकता है जब टहलने के लिये कोई किसी से कहता है कि चलो हवा खोरी को चलें तो लोग मजाक में कहा करते कि मैं सर्प नहीं हूं जो हवा खाने को चलूं, हवा खाना आसान नहीं है, योगी लोग ही हवा खाकर रह सकते हैं कई लोग टहलने अवश्य जाते हैं किन्तु हवाखोरी का सच्चा आनन्द नहीं लेते मुँह खोले, टेढ़ी गर्दन किये, कूबड़ झुकाये, उटपटांग पैर मटकते हुए घूमने निकलने से उतना लाभ नहीं होता। जैसा कि होना चाहिये, अकड़े हुए सीधे मस्तक रखे मुँह बन्द किये हाथों को हिलाते चलना चाहिये।

स्वर योग द्वारा उपचार मेरे 'स्वर योग' शीर्षक लेख जो पिछले अङ्कों में प्रकाशित हो चुके हैं पाठक भी पढ़ चुके हैं। जिसका लौकिक सिद्धान्त यह है कि कोई भी रोग आक्रमण पर स्वर बदल देना चाहिये, अब मैं कुछ वह ईश्वरीय नियम लिख रहा हूं जिनका प्रयोग करने से मनुष्य स्वस्थ्य और दीर्घजीवी हो सकता है तथा मनुष्य के लिए प्रातःकाल से रात्रि को सोते समय तक किन-किन नियमों का पालन करना हितकर होगा।

कहावत है Early to bed and early to rise, makes man healthy, wealthy and wise अथवा प्रातः समय की वायु को सेवन करत सुजान' शास्त्रोक्त है कि ब्राह्म महूर्त में उठना हितकर है।

योजागारतमृचकामयन्ते योजागारतभुसामानि-वन्ति । योजागार तमयं सोम आह तवाह भस्मि सख्येनव्योकाः ।।

अर्थात्:—जो मनुष्य प्रातःकाल में जाग उठता है उसको ऋचायें चाहती हैं, जो जगता है उसको ही स्तुतियाँ प्राप्त होती हैं। जो मनुष्य जाग जाता है उसको ईश्वर कहता है कि हे मनुष्य, मैं तेरी मित्रता स्थिर करता हूँ।

अतएव जैसा कि पूर्व अङ्कों में कहा जा चुका है कि तिथि दिवस के अनुसार ब्राह्म महूर्त में शुभ चलित स्वर में उठ कर शुद्ध मनोभाव से ईश्वर प्रार्थना करनी चाहिये तथा शौचादि से निवृत्ति हो दैनिक कर्म में प्रवृत्त हो।

बिस्तर छोड़ने के प्रथम बिस्तर पर चित्त हाथ पैर फैला कर बदन ढीला करके लेट जाओ। दोनों हाथों की कोहनियों से तिल्ली व जिगर को दबाकर पैरों को सिकोड़ो और फिर फैलादो इस प्रकार तीन चार बार करने के पश्चात ५-७ बार इधर उधर करबट लेकर आलस्यता दूर करो उसके बाद एक

या दो मिनट तक पेट के बल लेटो और तुरन्त उपरोक्त स्वर नियम के अनुसार बिस्तर छोड़ दो, इस क्रिया से मल ढीला होगा, तिल्ली व जिगर की ताकत बढ़ेगी यदि किसी को Lever या Spleen की शिकायत हो तो इसका प्रयोग कर बिना औषधि के लाभ प्राप्त करें, जिन्हें Lever या Spleen की बीमारी नहीं है उन्हें यह प्रयोग नित्य प्रति की आवश्यकता है, सप्ताह में दो या तीन बार काफी है किन्तु बिस्तर छोड़ने के पहले पेट के बल अवश्य लेटना चाहिये, सोकर उठने तथा भोजन के पश्चात् दाहिने अँगूठे से २-३ बार अपने मस्तिष्क को रगड़ना चाहिये, शास्त्र में इस क्रिया को 'कपालभाटी' कहते हैं, इससे कफ दोष का नाश होता है। इसी प्रकार सोकर उठने तथा संध्या समय तर्जनी को कानों में डालकर खुजलाना चाहिये, शास्त्र में इस क्रिया को 'कर्णभाटी' कहा है, इस क्रिया से कर्ण रोग अच्छे होते हैं।

शौचविधिः—पाठकगण कदाचित हँसेंगे कि शौचविधि के विषय में लिखने की क्या आवश्यकता है, यह तो बालक भी जानते हैं किन्तु मेरा निवेदन है कि बालक तो क्या युवक तथा वृद्ध भी उचित प्रकार से इस क्रिया को नहीं करते तथा मल शुद्धि ठीक न होने से जन समुदाय अनेक रोगों का शिकार बन रहा है अतएव इस पर प्रकाश डालना मैं उचित समझता हूं।

न वेगितोऽन्य कार्यः स्यान्न वेगानीरयेद् बलात्।
काम शोक भय क्रोधान मनो वेगान्निधारयेत्॥

अर्थात् मल मूत्र का वेग हो तो तुरन्त उसका त्याग करे इससे पहले कोई अन्य कार्य न करे तथा साथ बलात्कार से (काँख कर) मलादि वेगों को न निकाले, काम, शोक, क्रोध, भय इत्यादि मन के वेगों को रोके।

वस्तुतः सिद्धान्त यह है कि "सर्वे रोगा प्रजायन्ते वेगस्योदीर्णधारणान" अर्थात् समस्त रोग वेगों को जबरदस्ती से बलपूर्वक निकालने से तथा बलात्कार पूर्वक उनके धारण किये रहने से ही हो जाते हैं अतः बुद्धिमान मनुष्य को वेगों के त्यागने और ॰ करने के विषय में सदैव पूर्ण रूपेण सावधान की परम आवश्यकता है।

लघु शङ्का वाम स्वर में और दीर्घ शङ्का दक्षिण स्वर में करना चाहिये, हाँ दीर्घशङ्का के समय लघु-शङ्का का दक्षिण स्वर में करने में दोष नहीं है। पाठकों से प्रार्थना है कि इसे केवल कपोल कल्पित न समझ परीक्षा करें, दक्षिण स्वर चलते समय की लघुशङ्का एक शीशी में रक्खें वाम स्वर चलते समय की लघुशङ्का दूसरी शीशी में, दूसरी परीक्षा यह है कि चार छः महीने के शिशु को देखिये जब वह पेशाब करता है वाम स्वर चलेगा। तथा पाखाना फिरेगा तो दक्षिण स्वर चलेगा। यह स्वाभाविक है, आरम्भ में सम्भव है कुछ कठिनता प्रतीत हो किन्तु एक एक सप्ताह के अभ्यास के स्वभावतः ठीक समय पर ठीक स्वर चलेगा।

[क्रमशः]

मनुष्य सहस्त्रबार नीचे गिरता है, उसे सहस्त्रबार ऊंचे उठने का प्रयत्न करना चाहिए प्रतिवार उस सीमा से कुछ अधिक ऊंचा जहाँ से वह गिरा था। पूर्णता प्राप्त करने का यह अव्यर्थ साधन है।

❀ ❀ ❀ ❀

महा पुरुषों को दो वस्तुयें सब से प्यारी होती हैं श्रम और दुख। क्योंकि दुख के बिना हृदय निर्मल नहीं होता और श्रम के बिना मनुष्यत्व को नहीं समझा जा सकता।

❀ ❀ ❀ ❀

मारने में वीरता नहीं; पशुता है। परन्तु जिसमें स्वयं मरने की शक्ति है वह वीर है। त्याग का आदर्श महान है, वही संसार में कुछ कर सकता है जिसमें त्याग की मात्रा अधिक हो।

❀ ❀ ❀ ❀

जो पराई स्त्री को पाप की आंखों से देखता है वह परमात्मा के क्रोध को जगाता है और अपने लिए नरक का रास्ता साफ करता है।

अपने ऊपर विश्वास करो

[ले०—श्रीमती सावित्रीदेवी तिवारी, जयपुर]
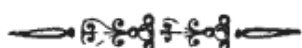
यह विश्व शक्ति की धुरी पर घूम रहा है। जो कुछ भी चलबल दिखाई पड़ती है उसकी मूल में शक्ति का स्रोत है। शक्ति के बिना एक तिनका भी नहीं हिल सकता। जड़ वस्तुओं में भी इस शक्ति का दिग्दर्शन होता है। मनुष्य तो इस शक्ति को ही प्रचुर परिमाण में धारण किये हुए है। उसके बल पर वह देवता और ईश्वर बन सकता है कितने दुख की बात है कि हमने अपने स्वरूप को पहचानना ही भुला दिये हैं।

दुनियाँ एक विचित्र भुलावे में पड़ी हुई है यही 'माया' है। यदि प्राणियों को अपनी सामर्थ्य का ज्ञान हो जाय तो वे कुछ से कुछ बन सकते हैं। घोड़े और हाथी जो हमारी सवारी के काम आते हैं यदि अपनी शक्ति को समझ जांय तो वे इस प्रकार मनुष्य के बन्धन में नहीं रहेंगे। ठीक इसी प्रकार यदि तुम अपनी सामर्थ्य को समझ जाओ तो परिस्थितियों के गुलाम नहीं बन सकते। आत्म ज्ञान होने पर संसार भाररूप प्रतीत नहीं हो सकता।

'क्या करें, परिस्थितियाँ हमारे अनुकूल नहीं हैं।' 'कोई हमारी सहायता नहीं करता।' 'कोई मौका नहीं मिलता' आदि शिकायतें निरर्थक हैं। अपने दोष को दूसरों पर थोपने के लिये इस प्रकार की बातें अपनी दिलजमई के लिये ही कही जाती हैं। कभी प्रारब्ध को मानते हैं, कभी देवताओं के सामने नाक रगड़ते हैं, कभी पूजा पाठ करने बैठते हैं किन्तु जब इस पर भी धन नहीं मिलता और मनोकामनायें पूरी नहीं हों तो उन पर से विश्वास उठ जाता है। इस सबका कारण है अपने ऊपर विश्वास का न होना।

दूसरों को बलवान्, धनवान, विद्वान और सुखी देखकर हम परमात्मा के न्याय पर उंगली उठाने लगते हैं पर यह नहीं देखते कि जिस परिश्रम और क्रिया कुशलता से इन सुखी लोगों ने अपने काम पूरे किये हैं क्या वह हमारे अन्दर है? ईश्वर किसी के साथ पक्षपात नहीं करता उसने वह आत्मशक्ति सबको मुक्त हाथों से प्रदान की है जिसके आधार पर वह उन्नति कर सके। जब निराशा और असफलताओं को अपने चारों ओर मंडराते देखें तो समझो कि तुम्हारा चित्त स्थिर नहीं तुम अपने ऊपर विश्वास नहीं करते।

वर्तमान समय में तुम जिस अवस्था में पड़े हुए हो असल में वह तुम्हारी खुद पसन्द की हुई है। प्रारंभ में जिस प्रकार की आदतें पड़ गई हैं जिस प्रकार के विचार बन गये हैं उसी दशा में पड़े हुये हो। इस दशा से छुटकारा हो नहीं सकता जब तक कि अपने पुराने सड़े गले विचारों को बदल न डालो। जब तक यह विश्वास न हो जाय कि तुम अपने अनुकूल चाहे जैसी अवस्था का निर्माण कर सकते हो तब तक तुम्हारे पैर उन्नति की ओर नहीं बढ़ सकते। पुराने सड़ियल संस्कारों ने तुम्हारे आत्म-प्रकाश को ढक लिया है। अगर आगे भी न संभलोगे तो हो सकता है कि दिव्य तेज किसी दिन बिलकुल ही क्षीण होजाय।

महापुरुषों के जीव चरित्रों से पता लगता है कि उनमें महान् कार्यों का संपादन किया, अद्भुत सफलतायें प्राप्त कीं और ऐसे ऐसे काम किये जिन्हें चमत्कार कहा जा सकता है वे उन कार्यों को जिस मन्त्र के बल से पूरे कर सके थे उसका नाम है 'आत्म-विश्वास' अपने ऊपर भरोसा करना। अंगरेजों का विश्वास है कि 'ईश्वर उसकी मदद करता है जो खुद अपनी मदद करता है।'

यदि तुम अपनी वर्तमान अप्रिय अवस्था से छुटकारा पाना चाहते हो तो अपनी मानसिक निर्बलता को दूर भगाओ। अपने अन्दर आत्म विश्वास जाग्रत करो और अपने मजबूत पैरों पर खड़े होकर कहो कि 'मैं अपना भाग्य अपने हाथ निर्माण करूंगा। जिस क्षण तुम्हारे संस्कार आत्म विश्वास को गृहण करेंगे उसी समय से तुम अपने में उस शक्ति का संचार होता हुआ पाओगे जिसके द्वारा कष्टों को आनन्द और उल्लास के रूप में बदला जाता है।

अहंभाव का प्रसार करो।

(पं० शिवनारायण शर्मा है० मा०, माईथान, आगरा)

संन्यासाश्रम

(११)

आज वह प्राचीन समय कहाँ ? बन सब राज्य की तरफ से रक्षित रहते हैं, कन्द, मूल, फल तो क्या लकड़ी भी बिना मंजूरी के और जगात दिये बिना नहीं मिल सकती । अतएव आधुनिक ब्रह्मर्षि व आचार्यों ने गृहस्थाश्रम रह कर ही वनस्थ का साधन करने का गुप्त रहस्य प्रचलित किया है उसका नाम है "आध्यात्मिक सतसङ्ग" यह पहले अरण्य में ही उपदिष्ट-साधित किया जाता था । समय का सदा परिवर्तन हुआ करता है उसी तरह यह भी क्रम बदलना पड़ा । इसमें शरीर को विशेष कष्ट न देकर मन द्वारा मानसिक साधन कराया जाता है । इसमें कुछ अङ्ग राजयोग के और तंत्रक शामिल हैं । पहले अन्तःकरण की शुद्धि के लिये मन्त्र जाप आदि करना पड़ता है, तब ईश्वर का स्थान और उनका परिचय करने की जिज्ञासा उत्पन्न होती है । अधिकारी हो जाने पर किसी न किसी प्रकार सद्गुरु के दर्शन होकर इस मार्ग का उपदेश प्राप्त हो जाता है । परन्तु यह विद्या अब तक सीने दर सीने ही चली आती है न तो वाणी द्वारा कहने ही में आती है और न लिखी जा सकती है । ऐसे सद् गुरु किसी प्रकार की खास पोशाक या चिह्न नहीं रखते, प्रायः गृहस्थ ही होते हैं वे किसी को घर छोड़ने या भिक्षा करने को बाध्य नहीं करते, बल्कि अपना जो व्यवसाय जिज्ञासु करता हो, जो इष्टदेव मानता हो, बराबर अपना वही व्यवसाय, नौकरी आदि करते रहो और आध्यात्मिक साधन भी करते रहो । आध्यात्मिक बन भी शरीर में ही तो है, यथा—काम, मोह, मद, अभिमान आदि बड़े बड़े पर्वत हैं, उन पर्वतों में असम्भावना और विपरीत भावना आदि प्रतिगह्वा गुफायें हैं, उन्हीं पर्वतों के आश्रम, प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति ये पाँच बड़ी गहरी और बेगवान नदियाँ और उनके अनेक भेद नाले रूप हैं, इनमें पड़ कर जीव काल रूप समुद्र की ओर बहे चले जाते हैं । ये नदियाँ बड़ी भयानक हैं इनसे पार होना बड़ा ही दुस्तर है । इस वन में असत्य रूप भालू, चार्वाकादि नास्तिकों के मतरूप भेड़िये दिन रात हां ऊं हां ऊं किया करते हैं । और मृत्यु रूप सिंह सदा गर्जता रहता है । बुढ़ापा रूपी हाथी अपने अधि (मन के रोग) व्याधि (शरीर के रोग) रूप दोनों दांतों से सबको मर्दन करते रहते हैं । इनके शब्द सुनने से बड़े बड़े धीर पुरुषों के धीरज भाग जाते हैं ।

> नर अहार रजनीचर करहीं ।
> कपट वेष विधि कोटिन धरहीं ॥
> लागे अति पहाड़ कर पानी ।
> विपिन विपति नहीं जात बखानी ॥
> व्याल कराल विहंग बन घोरा ।
> निश्चिर निकर नारि नर चोरा ॥

इस वन में अविद्या रूप रात्रि में विचरने वाले अविवेक आदि निशाचर मनुष्यादिकों का आहार करते हैं और तूलाऽहंकारादि निश्चिर कहीं साधु का, कहीं पंडित का, कहीं राजा का, कहीं ज्ञानी का, कहीं भेद वादी का अनेक वेष धारण कर मनुष्यों को मोह उत्पन्न करते हैं । और कामादि पहाड़ों के तृष्णादि पानी जिनको लगते हैं उनका प्राणान्त ही करके छोड़ते हैं । लोभादिक बड़े बड़े सर्प, दम्भादि बड़े विकराल पक्षी, अहंकार मोहादि बड़े दुष्ट रजनीचर शान्ति, दया, मुदिता धीरज विवेकादि स्त्री पुरुषों को हरने वाले अनेक फिरते हैं । ऐसे भयङ्कर वन की स्मृति मात्र आने से बड़े बड़े विवेकी और धीर पुरुष भी भयभीत होते हैं । इस जीवन में क्या कभी आप का इन जन्तुओं से साक्षात् हुआ है ? क्या ये बातें सच्ची अनुभव में आई हैं ? यदि ऐसा है तो ज्ञान रूप रामजी की शरण होने से इनसे मुक्ति पा सकोगे अन्यथा नहीं ।

भगवान् मनु संन्यास आश्रम के सम्बन्ध में कुछ नियम निर्धारित करते हैं—

वानप्रस्थ आश्रम में एक स्थान पर रहने से जो कुछ ममता रह जाती है उसे भी परित्याग करने के लिये वे इस चतुर्थ आश्रम में किसी एक निर्दिष्ट स्थान में बास न करें। एवम् ऐहिक चिन्ता बिल्कुल परित्याग कर केवल परब्रह्म की चिन्ता में मग्न रहें। मोक्ष प्राप्ति के लिये वह एकाकी सङ्गविवर्जित होकर भ्रमण करें, जो साधक त्याग करने और त्यक्त होने के कारण दुःख अनुभव नहीं करते, वे ही मोक्ष को प्राप्त होते हैं। अग्नि और गृह विवर्जित होकर वे आहार के लिये ग्राम में जा सकते हैं, वे सब विषयों से उदासीन हों, स्थिर मति रहें, एवम् ब्रह्म में चित्त समाहित कर मुनि भाव अवलम्बन करें। वे दिन में एक बार भिक्षा करें, अधिक भिक्षा प्राप्ति के लिये व्यग्र न हों क्योंकि जो अति भिक्षा में आसक्त होगा वह विषय में भी आसक्त होगा। वे मरण की भी कामना न करें और जीने की भी कामना न करें। भृत्य जैसे निर्दिष्ट वेतन की प्रतीक्षा करता रहता है वे भी उसी प्रकार काल की प्रतीक्षा करें। भिक्षु जीव हिंसा त्याग के लिये धरती पर दृष्टि करते हुए पैर रक्खे, वस्त्र से छान कर जल पीवें, सत्य से पवित्र वाक्य बोलें और मन विशुद्ध रख कर समस्त आचरण करें। यदि कोई कटु वचन भी कहे तो उसे सहन करें, किसी का अपमान न करें। यदि कोई उन्हें शाप भी दे तो वे उसे आशीर्वाद ही देवें। चक्षु आदि ५ वाह्य ज्ञानेद्रियां एवम् मन और बुद्धि इन सात इन्द्रिय ग्राह्य वस्तु विषयक कोई वृथा वाक्य न कहें। केवल ब्रह्म विषयक वाक्य ही बोलें।

अ० ६ श्लोक ४१ से ४८ तक

जिन्होंने इस प्रकार शनैः शनैः सब वासनायें त्याग की हैं एवम् सुख, दुःख, शीत, ग्रीष्म इत्यादि परस्पर विरुद्ध धर्म वाले पदार्थों की अनुभूति छोड़ दी है। अर्थात् सुख, दुःखादि में ज्ञान वर्जित हुए हैं, वे ही परब्रह्म को प्राप्त होते हैं।

हे मानव ! तुम यदि अहंभाव का प्रसार चाहो तो ब्रह्मचर्य पालन कर कठोर संयम साधन-तपस्या द्वारा देह, इन्द्रिय, मन शुद्ध करके गृहस्थाश्रम में अनेक प्रकार के कर्तव्य प्रति पालन करके संन्यास आश्रम में प्रवेश करो। तो तुम माया के बन्धन काट कर सब भूतों में आत्म दर्शन करके, अहंभाव का प्रसार साधन पूर्वक परब्रह्म में लीन होकर, चिर अद्वैतानन्द सम्भोग कर सकोगे।

भक्त गाथा—

समदृष्टि।

"अरे नामू ! तेरी धोती में खून कैसे लग रहा है ?"

"यह तो माँ ! मैंने कुल्हाड़ी से पग को छीलकर देखा था।"

माँ ने धोती उठाकर देखा— पैर में एक जगह की चमड़ी मांस सहित छील दी गई है। नामदेव तो ऐसे लच रहा था मानो उसको कुछ हुआ ही नहीं।

माँ ने फिर पूछा—"नामू तू बड़ा मूर्ख है। कोई अपने पैर पर भी कुल्हाड़ी चलाया करता है ? पैर टूट जाय तो लंगड़ा होना पड़े। घाव पक जाय या सड़ जाय तो पैर कटवाने की नौबत आवे।"

"तब पेड़ को भी कुल्हाड़ी से चोट लगनी चाहिये उस दिन तेरे कहने से मैं पलास के पेड़ पर कुल्हाड़ी चला कर उसकी छाल उतार लाया था। मेरे मन में आई कि अपने पैर की छाल भी उतार कर देखूं, मुझे कैसी लगती है। पलास के पेड़ को कुछ हुआ होगा, यही जानने के लिए मैंने ऐसा किया है माँ।"

नामदेव की माँ को याद आया कि मैंने नामू को उस दिन काढ़े के लिए पलास की छाल लाने भेजा था। माँ रो पड़ी। उसने कहा–बेटा नामू मालूम होता है तू महान साधु होगा। पेड़ों में और दूसरे जीव जन्तुओं में भी मनुष्य के ही जैसा जीव है। अपने चोट लगने पर दुख होता है वैसा ही उनको भी होता है।"

बड़ा होने पर यही नामू प्रसिद्ध भक्त नामदेव हुये।

—शक्ति

卐 स्वस्तिक 卐

(लेखक—विद्याभूषण पं० मोहन शर्मा, विशारद)
पूर्व सम्पादक मोहिनी।

[गतांक से आगे]

कई एकों को मैंने द्वार पर स्वस्तिका बनाते प्रत्यक्ष आंखों से देखा है। फिर चाहे वर्षों पर्यन्त हिंदुओं के सम्पर्क में रहने से ही इस भाव का इनमें उदय क्यों न हुआ हो? बौद्धमतावलम्बी आदि काल से ही स्वस्तिक को मानते बनाते आये हैं ईसाइयों ने उसके अधोलिखित और बिगड़े हुये स्वरूप क्रास (Cross mark) को अपनाया है। और मुसलमानों ने हमारे अपने चन्द्रमा के शास्त्रीय स्वरूप को लेकर अर्द्धचन्द्र की प्रतिष्ठा से यथार्थ में स्वस्तिक की ही प्रतिष्ठा की है।

जैन जाति की मुख्यतः दो श्रेणियां हैं दिगाम्बर और श्वेताम्बर! तथा इन दो में से भी अन्य शाखायें प्रस्फुटित हुई हैं। इन सबों में 'स्वस्तिक' और 'ॐ' दोनों का सचराचर व्यवहार होता हुआ हम पाते हैं। इनके २४ तीर्थङ्करों में से एक का यह ख़ास चिन्ह भी माना जाता है। दिगाम्बर संप्रदाय वाले जैन अपनी नित्य पूजा में केशर, चन्दन द्वारा अथवा अन्य पवित्र द्रव्य की सहायता से 'स्वस्तिक' अङ्कित करते हैं। और उसके चारों कोण तथा मध्य भाग को पांच बिंदियाँ देकर और भी शोभायुक्त बनाते हैं। स्वस्तिक के ऊपरी भाग में 'ॐ ह्री' लिख दिया जाता है। स्वस्तिक से पञ्च परमेष्ठी और पाँच बिन्दियों से अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु पुरुषों के आवाहन या प्रतिष्ठा का तात्पर्य लिया जाता है।

इसी भांति श्वेताम्बर समाज वाले नित्य पूजा में चांवल चर्चित स्वस्तिक खींचकर उसके सिरों भाग में अर्द्ध चन्द्रकार बिंदी बना उसके नीचे तीन बिंदियाँ अलग से जोड़ते हैं। जिसका भाव यह है कि सम्यक ज्ञान, सम्यक चारित्रय और सम्यक दर्शन को लाभ करते हुये हम मोक्ष को प्राप्त हों। समग्र जैन जगत में स्वस्तिक का महात्मय मानने और स्वस्तिक बनाने की प्रथा चिरकाल से चली आ रही है। इसकी पवित्रता और धार्मिकता का भाव जैन मतावलम्बियों के रोम-रोम में समाया है।

समुद्र पार सुदूर देशों में जर्मनी का उदाहरण सामने है। जर्मन लोग अपने को आर्य जाति (Aryan Race) का अभिहित करते हैं। स्वस्तिक को ये लोग राष्ट्रीय पवित्र चिन्ह के रूप में धारण करते और मानते हैं। एडोल्फ हिटलर का बेज, और उसकी सेनावाहिनी के सैनिकों के बेजों में यही विश्व विश्रुत चिंह स्वस्तिक रहता है। जर्मनी की राष्ट्रीय ध्वज में भी यही स्वस्तिक है।

स्वस्तिक, शुभ विषय, मंगल द्रव्य, कल्याण आदि के भाव का बोध करता है। हिन्दू जैन, बौद्ध आदि जातियों के प्रत्येक शुभ और कल्याणकारी कार्य में स्वस्तिक का चिन्ह सर्व प्रथम प्रतिष्ठित करने का आदिकाल से ही नियम है। उनका यह चिराचरित विधान है। मंगल कार्यों में स्वस्तिक, गृह, प्राङ्गण, द्वार से लेकर मुहूर्त्त पात्रों, जन्माङ्गों आदि तक में सिन्दूर, हल्दी या अन्य पवित्र द्रव्य की सहायता से बनाया जाता है। इसी को "साथिये रखना" भी कहते हैं। 'ॐ' का यह रूपांतर अथवा ॐ लिखने का यह दूसरा ढंग स्वस्तिक (!) धर्म प्रेमियों को पवित्रता, भलाई और निवृत्ति की ओर खींचता है।

एक इतिहासज्ञ का कथन है कि सातवीं शताब्दी में 'स्वस्तिक' का चिन्ह मवेशियों पर दाग दिया जाता था। विक्रम से २०० वर्ष पहिले के बने हुये एक स्वर्ण पात्र के ऊपर भी स्वस्तिक बना हुआ पाया गया है। इस पात्र में भस्मीभूत भगवान् बुद्धदेव की अस्थिरखी हुई मिली हैं। २६०० वर्ष के प्राचीन यूनानी बर्तनों पर भी 'स्वस्तिक' खचित अवस्था में पाया गया है। अत्यंत प्राचीन स्वस्तिक का चिन्ह एक चर्खे पर बना हुआ मिला है जो ट्रोय के तीसरे नगर से प्राप्त हुआ है और जो प्रायः ३८०० वर्ष पुराना बताया जाता है। भारत सरकार के पुरातत्व विभाग की अन्य कई महत्वपूर्ण खोजें भी स्वस्तिक की प्राचीनता और पवित्रता के प्रमाणों पर अच्छा प्रकाश डालती है।

कहने का हेतु यह कि 'स्वस्तिक' में व्यष्टि और समष्टि के कल्याण का भाव ग्रथित है। स्वस्तिक विश्व के प्राणियों को कल्याण की ओर जाने का अपूर्व और अमर संदेश देता है। स्वस्तिक अनादि है अभेद्य है, अनन्त पृथ्वियां, स्वस्तिक में आबद्ध हैं और स्वस्तिक उनमें अपने जुदे जुदे स्वरूप को लिये हुये अङ्कित और प्रकाशित है।

———

विचार वल से दीर्घ जीवन

(ले०—प्रो० के० पी० टण्डन, फैजाबाद)

दीर्घजीवी बनने के लिये सर्व प्रथम यह आवश्यक है कि अपने अन्दर इस बात की हार्दिक इच्छा उत्पन्न की जाय कि आयु बढ़े। वैसे तो प्रत्येक स्त्री व पुरुष की अभिलाषा अधिक से अधिक समय तक जीवित रहने की हुआ करती है किन्तु जिस अभिलाषा को मैं उत्पन्न कराना चाहता हूँ वह विचार बल तथा मनोबल से मिश्रित इच्छा शक्ति से तात्पर्य रखती है। इसकी सरल युक्ति यह है कि जब जब अवकाश मिले अपने अन्तःकरण से इस बात की दृढ़ धारणा करो कि तुम चिरकाल तक युवा बने रहोगे और तुम्हारा स्वास्थ्य कभी भी ढीला नहीं पड़ सकता। ऐसी चिन्ता करने से तुम्हारे अन्दर उत्साह और शक्ति का प्रकाश होगा और उसे तुम स्वयम् अनुभव कर सकोगे। इसके अतिरिक्त प्रकृति के नियमों का भी पालन करो। बुरी सङ्गत से बचे रहो। गन्दे उपन्यास, सफरी सरकस व रङ्गीले चित्रों से भी घृणा करो। यह भी मालूम रहना चाहिये कि स्वास्थ्य में बाधा डालने वाले शत्रु यह हैं :—काम, क्रोध, द्वेष, दोष ढूंढ़ना ; भ्रम, लापरवाई ; किसी बात का सख्त विरोध करना, दूसरों को बुरी बात कहना। क्योंकि इससे दूसरे की आत्मा को दुख पहुँचता है और आत्मा का दुखाना पाप है।

किसी क्षण भी ऐसा कोई कार्य न किया जाये जिससे दूसरे की बुराई हो। जितने भी द्वेष या भ्रम के भाव हों वे पास न फटकने चाहियें। दूसरे से बदला लेने का विचार हृदय में बिलकुल नहीं आने देना चाहिये। क्योंकि ऐसा विचार होने से शरीर में गर्मी बढ़ जाती है और वह गर्मी शरीर को किसी कदर क्षीण बनाती है। इस बात पर पूर्ण विश्वास होना चाहिये कि विचार ही आत्मा की शक्ति है। और विचार बल से ही एक मरता हुआ आदमी भी जिन्दा रह सकता है।

प्राचीनकाल में एक कहावत थी कि " बुरे भाव जिसके हों उसका जीवन आधा होता है " यह बात बिल्कुल ठीक ही है। कामी पुरुष जिन्होंने भोग का खूब आनन्द लिया करोड़ों की संख्या में बहुत शीघ्र मृत्यु की गोद में जा बैठे हैं। आनन्द की और मृत्यु की तो सदा बाजी रही और रहेगी और इस बाजी का दूसरा नाम ही मौत है। बड़े बड़े पुरुषोत्तम पुरुषों के भी शत्रु रहे और तुम्हारे भी होंगे किन्तु तुम्हें चाहिये कि महान पुरुषों की भाँति तुम उन्हें क्षमा दान दो। इससे तुम्हारी आत्मा को अत्यन्त शान्ति मिलेगी। और जब तुम्हारी आत्मा को शान्ति मिलेगी तो उसके फल स्वरूप आयु की वृद्धि होगी। तुम हमेशा अपने दिल में ऐसे भाव उत्पन्न करो कि संसार में मैं किसी का भी शत्रु नहीं हूँ और मेरा जीवन शान्ति से भरपूर है। मेरे हृदय के अन्दर किसी के प्रति घृणा व द्वेष के भाव नहीं उत्पन्न हो सकते। मैं सब से प्रेम करता हूं और सब का मैं मित्र हूं। प्रत्येक मनुष्य भला है। इन्हीं विचारों का अनुभव करो तब तुम्हें शान्ति की ज्वाला के दर्शन होंगे और अमरत्व प्राप्त होगा।

प्रयत्न करो कि तुम स्वास्थ्य पुरुषकार को प्राप्त कर सको। प्रकृति के नियमों को पहचानो और उन्हीं के अनुसार आचरण रक्खो। रोज कुछ देर तक शान्त चित हो कर यह सोचो कि तुम सर्वदा स्वस्थ रहोगे। रोग तुम्हारे पास तक न आ सकेगा। अपनी आत्मा का शरीर के साथ घना सम्बन्ध समझो याद रक्खो कि स्वाथ्य ही जीवन का मुख्य आधार है। इच्छा शक्ति बढ़ाओ। आशा रूपी लता को फैलाओ और पूर्ण विश्वासी बनो।

प्रत्येक के प्रति दान व दया के भाव रक्खो। अपनी इन्द्रियों को वश में रक्खो। पेट की ज्वाला को भी शान्त रक्खो और हल्का भोजन करो। अपने अन्दर शान्ति की उत्पत्ति करो और आत्मिक बल बढ़ाओ। स्वस्थ्य से सम्बन्ध रखने वाले पदार्थ जैसे भोजन, हवा, पानी, वस्त्र आदि स्वच्छ हों। निद्रा काफी हो। इत्यादि। इन पर ध्यान देते हुए अपने स्वास्थ्य और जीवन की यात्रा को दूर तक तय करने की कोशिश करो। रोज ईश्वर से अपने स्वास्थ्य और जीवन के लिये प्रार्थना करो और अपने अपराधों की क्षमा माँगते रहो। इस प्रकार तुम्हारा जीवन शान्तिमय होने से अवश्य दीर्घजीवी बन जायगा और एक शताब्दी तक जीवित रह सकेगा।

तीन तपसी।

(महात्मा टाल्सटाय की एक रूसी कहानी का अनुवाद)

समुद्र के बीचों बीच एक छोटासा द्वीप था उस पर तीन साधु तपस्या किया करते थे। जो जहाज उधर से निकलते इन महात्माओं की कुछ चर्चा सुन जाते और अपने देश में जा कहते।

एक बार एक धर्माचार्य जहाज द्वारा उधर से यात्रा करते हुये निकले। लोगों ने उन तपसियों के बारे में जब चर्चा की तो आचार्य उन से मिलने के लिये उत्सुक हो उठे। उन्होंने मल्लाहों को जहाज रोकने का आदेश किया। जहाज रोक दिया गया और वे एक छोटी डोंगी की सहायता से टापू तक पहुंचे।

आचार्य तपसियों की कुटी पर पहुँचे। उन तीनों वृद्धों ने झुक झुक कर आगन्तुक का अभिवादन किया। आचार्य ने उन्हें आशीर्वाद दिया और कहा "मैंने सुना था कि आप लोग अपनी आत्मा के उद्धार के लिये यहाँ रहते हैं और पूजा उपासना करते हैं। मैं धर्माचार्य हूं और संसार के प्राणियों को धर्म के मार्ग पर चलाने का कार्य करता हूं। मैंने सोचा कि आप प्रभु के भक्त हैं इसलिये आपके पास जा कर जो बन सके सहायता करूं और जो जानता हूं समझाऊं।" तीनों वृद्ध पुरुषों ने उनका आभार माना और उपकार के लिये कृतज्ञता प्रकट की।

आचार्य ने पूछा—बतलाइये आप आत्मोद्धार के लिये यहाँ क्या करते हैं? और पूजा अर्चा का अनुष्ठान किस प्रकार करते हैं?

तपसियों में से सब से वृद्ध पुरुष ने नम्रता पूर्वक कहा:—हे ईश्वर के दूत! ईश्वर की पूजा की विधि हमें बिलकुल भी मालूम नहीं है। हमतो अपना पालन कर लेते हैं और अपनी ही कुछ सेवा कर लेते हैं।

आचार्य ने फिर पूछा—आप परमात्मा की प्रार्थना कैसे करते हैं?

वृद्ध ने कहा—हम तो इस प्रकार किया करते हैं "तीन तुम, तीन हम, हम पर दया रखना स्वामी" इतना कहने पर तीनों ने आकाश की ओर शिर उठाया और एक स्वर से फिर दुहराया—तीन तुम, तीन हम हम पर दया रखना स्वामी।"

आचार्य हँसे और उनसे कहा—आप लोगों की प्रार्थना ठीक नहीं है। धर्मशास्त्र में विधि पूर्वक प्रार्थना करने का जो नियम है मैं आप लोगों को उसे ही सिखाना चाहता हूं। प्रार्थना की शास्त्रोक्त विधि सुनिये और उसे मेरे साथ साथ दुहराते चलिये।

"हे परम पिता!"

उन तीनों ने दुहराया "हे परमपिता!"

"जिनका कि आकाश में निवास है।" पहले तपसी ने दुहराया—'जिनका कि आकाश में निवास है। लेकिन दूसरा कहते कहते भूल गया। और तीसरा तो उन शब्दों का ठीक ठीक उच्चारण भी न कर सका।

आचार्य ने प्रार्थना को दुहराया और तपसियों ने उसे तिहराया। धर्माचार्य एक शिला पर विराज गये और तीनों बड़े तपसी हाथ बाँध कर उनके सामने खड़े रहे और उनके सिखाये हुए मन्त्र को याद करने की कोशिश करते रहे। एक शब्द को उन्होंने सौ सौ बार हजार हजार बार दुहराया। जहाँ भूल होती आचार्य बता देते इस प्रकार सारे दिन प्रयत्न करने के उपरान्त जब वे प्रार्थना को बिना भूले दुहराने लगे तो आचार्य को शान्ति आई और वे प्रसन्नता पूर्वक वापिस जाने लगे।

जब वे चलने लगे तो तीनों वृद्धों ने भूमि पर लेट कर उन्हें साष्टाङ्ग दण्डवत किया। आचार्य ने उन्हें आशीर्वाद दिया और अपनी सिखाई हुई प्रर्थना को ही करते रहने का आदेश देकर चलदिये।

डोंगी द्वारा आचार्य जहाज पर पहुँचे। तब जहाज आगे बढ़ा दिया गया। सूनसान रात्रि में सब यात्री सो रहे थे पर आचार्य को नींद नहीं आ रही थी वह प्रसन्नता से फूल रहे थे उन्हें अपने कार्य पर गर्व हो रहा था उन्हें तपसियों का भोला भाला चहरा याद आ रहा था। "कैसे भले आदमी थे। प्रार्थना को सीख कर कैसे कृतज्ञ हो रहे थे।"

समालोचना।

सत्येन्द्र सन्देश—

लेखिका श्री कुंवर रानी साहिबा चन्द्र कुमारी देव।
सम्पादक पं० केदारनाथ शर्मा 'परलोक'।
प्रकाशक धर्म प्रेस मेरठ मूल्य १)। छपाई सफाई उत्तम

इस पुस्तक में रानी साहिबा के प्रिय भाई कुंवर सत्येन्द्र कुमारसिंह जी की स्वर्गीय आत्मा द्वारा आये हुए सन्देशों का संग्रह है। लेखिका ने अपने भाई के बिछोह में बड़ी मार्मिक पीड़ा का अनुभव करके उन की स्वर्गीय आत्मा में सम्बन्ध स्थापित करने का मार्मिक प्रयत्न किया है और वे बहुत अंशों तक अपनी तपस्या में सफल हुई हैं। स्वर्गीय कुंवर साहब ने स्वयम् लेखनप्रणाली तथा अन्य प्रकारों से अपने अस्तित्व का जो परिचय दिया है उसे देखते हुए प्रेत आत्माओं के सम्बन्ध में बहुत सी जानकारी प्राप्त होती है। उदार लेखिका ने इस बहुमूल्य पुस्तक को अपने खर्च से छपा कर 'परलोक' मासिक पत्र को दान दे दी है जिससे उस पत्र को सहायता मिले। पुस्तक उपयोगी और संग्रहणीय है।

विभूतिपती व्रजभाषा—

लेखक—कवि सम्राट पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय।
प्रकाशक—व्रजसाहित्य-ग्रन्थमाला, बृन्दावन।
मूल्य ।=) छपाई आदि उत्तम।

इस पुस्तक में विद्वान एवम् अधिकारी लेखक ने व्रज भाषा का बड़ा ही मार्मिक विवेचन किया है। व्रज भाषा की प्रष्टस्तता एवम् प्राचीनता को सुन्दरता से सिद्ध करते हुए लेखक ने इस भाषा के माधुर्य का आलोचनात्मक वर्णन किया है। व्रजभाषा प्रेमियों के बड़े काम की है। हम प्रत्येक साहित्य-प्रेमी से अनुरोध करेंगे कि इसकी एक प्रति अवश्य मंगावें।

भ्रमर गीत—

ले०-व्रजभाषा के सुविख्यात महाकवि श्री नन्ददास जी।
प्रकाशक – उपरोक्त मूल्य =) छपाई आदि उत्तम।

यह पुस्तक अत्यन्त प्रसिद्ध ग्रन्थ है। कई परीक्षाओं में पाठ्य ग्रन्थ भी है। भगवान् श्री कृष्ण के प्रेम में मतवाली व्रज गोपिकाओं का एवम् भगवत्सखा श्री उद्धव जी का बड़ा मार्मिक सम्वाद है। पुस्तक संग्रहणीय है।

राष्ट्र लक्ष्मी—

(पाक्षिक पत्र) सम्पादक पं० दाऊदत्त उपाध्याय।
प्रकाशक-साहित्यतीर्थ, अ० भा० गोपाल संघ,
(शाखा) कंसखार मथुरा।
बा० मूल्य १।) एक का)॥

प्रस्तुत पत्र गो धर्म तथा संस्कृत का पोषक है। इसमें राष्ट्र तथा जाति की सामाजिक, धार्मिक तथा राजनैतिक समस्याओं का सुलझा हुआ विवेचन रहता है। भगवान् कृष्ण की जन्मभूमि व्रजमण्डल से गो बध का समलोच्छेदन करना ही अभीष्ट इसका मिशन है। इसने इस निर्धन कृषक देश की गौ धन की समस्या को एक नया ही आर्थिक रूप दिया है। वर्ष में अनेक विशेषांक देता है, अब तक के विजयांक इत्यादि दर्शनीय हैं। संक्षेप में भाव भरी कविताऐं, गम्भीर लेख, मार्मिक कहानियां, मनोरंजक इतने सस्ते और सुन्दर हैं कि प्रशंसा किये बिना रहा नहीं जाता।

—— नमूना मुफ्त।

भजन तान गीता—

रचियता योगीराज मुनीश्वर शिवकुमार शास्त्री।
प्रकाशक ज्ञानशक्ति प्रेस गोरखपुर, मूल्य =)

इस पुस्तक में आशीर्वाद, बन्धन, सच्ची बात, भक्तों की भूल, अन्धविश्वास, आत्म पूजा, सच्चा प्रेमी और सच्चाप्रिय, शिवोऽहम, योग साधन, आत्मगौरव, सफलता का रहस्य, आत्मज्ञान, सृष्टिकर्ता, योग कठिन नहीं है, शुभ कामना, साधन, सच्चा स्वरूप, भूला शेर, जीव की महिमा, कर्म महिमा, सर्व शक्तिमान जीव, जीव और संसार योगाभ्यास, आत्याय मान, सच्चा योग, अपनी भूल, योग व्यायाम, योग साधन, हम कौन हैं, मन की महिमा, मतलबी दुनियां शीर्षक बड़े ही सुन्दर पद्य हैं। जिनके द्वारा गायन तथा आत्मज्ञान दोनों का आनन्द प्राप्त होता है। तत्वज्ञान के जिज्ञासुओं के लिये बड़े काम की चीज है।

—— —विशालाक्ष।

पाठकों के पत्र।

नये वर्ष के उपलक्ष में अखण्ड ज्योति के असंख्य प्रेमी पाठाकों के पत्र हमें प्राप्त हुए हैं जिसमें उन्होंने उसके अमूल्य ज्ञान भण्डार हमारे पवित्र मिशन और अब तक के किये गये कार्य की भूरि भूरि प्रशंसा की है। अनेकों ने अपने निजी अनुभवों का उल्लेख करते हुए बताया है कि इस पत्रिका ने एक वर्ष में ही उनके जीवन को बदल कर बिलकुल दूसरे मार्ग पर लगा दिया। वे इस पत्रिका में ईश्वरीय संदेश देखते हैं। अनेक पाठकों ने तो अपनी श्रद्धा भक्ति के कारण प्रशंसा में अतिशयोक्ति करदी है। कितने ही पाठक ऐसे हैं जो अपने सच्चे हृदयोद्‌गार प्रकट कर देना ही पर्याप्त नहीं समझते वरन इससे आगे अखंड ज्योति की क्रियात्मक सहायता भी करते हैं। श्री० कालीप्रसाद राय खिरना, रा० सा० नारायणप्रसाद तिवारी, अगापुर, श्री० रघुनाथप्रसाद जी बनारस आदि सज्जनों ने आर्थिक सहायताऐं भेजी हैं। कुंवर सज्जनसिंह भटनागर, पं० नारायणप्रसाद 'उज्ज्वल' हकीम गणपतराय, श्री० प्रेमरत्न मूंधड़ा, पं० हनुमानप्रसाद 'कुसुम' श्री० गुरुचरण जी आदि युवक, बाबू राजनारायण जी श्रीवास्तव, स्वामी मुरलीधर जी जिज्ञासु, श्री० परशुराम जी शाण्डिल्य, कविराज सिद्धगोपाल जी श्रेष्ठ, श्री० जी० एन० सोलंकी आदि अनेक ग्राहक बढ़ाये हैं और आगे भी बिशेष प्रयत्न करने का बचन दिया है। श्रीमान् पं० श्रीकान्त शास्त्री योगिराज उमेशन्द जी, पं० शिवनारायण जी, आचार्य भद्रसेन, वालन, साबित्री देवी तिवारी, बहिन कमला-सिंधी, बहिन गिरजा देवी, श्री० बी० डी० ऋषि, प्रो० चक्रवर्ती, पं० जगन्नाथप्रसाद दोसा, डाक्टर शिवरतनलाल त्रिपाठी, मास्टर उमादत्त, पं० मोहन शर्मा, श्री० रामेश्वरदयालु गुप्ता, पं० भोजराज जी शुक्ल, पं० प्रेमनारायण शर्मा, श्री० धूमसिंह जी वर्मा आदि विद्वान् लेखकों ने बड़ी ही सुन्दर रचनाओं से अखण्ड ज्योति को सजाया है। हमारे पास शब्द नहीं हैं कि जिनसे इनके प्रति कुछ कह सकें। कई और भी महानुभाव आर्थिक सहायता करना चाहते हैं। उनसे हमारा निवेदन है कि कुछ बहुमूल्य ज्ञान की पुस्तकें अभी तक बिना छपी हैं। उन्हें अपनी सहायता से छपा कर पुण्य और यश के भागी बनें। सहायता देने वालों के चित्र सहित पुस्तक प्रकाशित की जायेंगी। सम्पन्न उदार प्रेमी इसी अंक में समालोचना पृष्ठ पर अंकित श्रीमती रानी प्रचण्डवर्ता देवी का अनुकरण कर सकते हैं जिन्होंने बहुमूल्य पुस्तक 'सत्येन्द्र सन्देश' अपने खर्च से छपा कर मासिक पत्र 'परलोक' को दान दे दी है। उससे उस पत्र को बड़ी सहाता मिली है।

अपने इन असंख्य प्रेमी पाठकों के लिये अलग अलग पत्र भेजने के लिये हमारे पास पैसे नहीं हैं अतएव इन पंक्तियों द्वारा ही अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं और उनसे यही अनुरोध करते हैं कि धर्म प्रचार का यह कार्य जितना हमारा है उतना ही हर एक प्रेमी का है इसलिये इसके विचार के लिये यह आवश्यक है कि हमारा हरएक शुभचिन्तक 'अखण्ड ज्योति' के पाठक बढ़ाने के लिये सच्चे हृदय से परिश्रम करें। श्रीराम शर्मा सम्पादक।

साधकों के पत्र।

आपकी प्रेषित 'सूर्य चिकित्सा विज्ञान' तथा 'प्राण चिकित्सा विज्ञान' दोनो पुस्तकें प्राप्त हुईं पढ़ कर अतीव आनन्द हुआ। प्राण चिकित्सा सम्प्रतकालीन समाज को एक दम नई सी है। मुझे इस आधार पर पूर्ण विश्वास पहिले से भी था। अब मुझे यह सफल गुरू का काम देगी।

रामनारायण आयुर्वेदाचार्य।

सूर्य चि० वि०, प्राण चि० वि० पुस्तकें मिलीं। जिसमें प्रा चि० वि० को पढ़ कर हमसे उसका महत्व वर्णन नहीं हो सकता। हम योग शास्त्र तथा तन्त्र शास्त्र के पहलुओं से देखते हैं तो सब विषयों का समावेश इसमें मिलता है। ५-६ महीने से 'मैं क्या कहूं' पुस्तक देख रहा हूं। २-५ मिनट आसन पर बैठ जाता हूं उसीके बल पर शारीरिक आरोग्यता लाभ कर रहा हूं। —कालीप्रसाद राय, खिरना।